

अयम्

* लहरी वाडवानलः *

रहस्यलहर्य्याः खण्डनात्मकः

सच

आधुनिकावैदिकवामकौलादिमततमस्तिरस्करणसमुद्यत्सहस्रभानुभानुविभवानां श्रीस्वामिविश्वेश्वराश्रमाणांनिदेशेन जम्बूनिवासिभिर्मुद्रापितः ॥



जम्बू
रणवीर प्रकाश यन्त्रालय में दीवान आलिमचन्द जी. सी.
के अधिकार से छपा ।
सं० १९७४ । २०० कापी ।

Lahari Vadwanal

श्रीगजवदनाय नमः श्रीगुरुभ्यो न
मः॥ अथ लहरीवाडवानलभूमि
काप्रस्तूयते॥ यद्भारतं सकलदे
शसुपूतमासीन्मायाप्यथोऽवि
चलनाद्धरिभक्तितश्च कालें
नयेन परिहृत्तिमनायि तच्च का
लन्तमेव कुटिलम्प्रणतोऽस्मि
पूर्वम्॥१॥ वात्स्यायनादिमुनि
वर्य निषिक्तमूलां ज्ञानप्रसू
नललितां सुकृतार्घ्यवल्लीम्।
दुस्तर्कतीक्ष्णविषमानलधु
ध्यमानां शीतैः सुतर्कसलिलैः
परिलेचयामि॥२॥ परिब्रजन्तं
परित्यक्तवन्तं काषायवासः
परिधानपूर्वम्। अधर्मसक्त
स्तमयं सुधर्मे निरीक्ष्य देवोऽ
वतारम्भूमिम्॥३॥ = ❀ =॥

6056

Price Rs 0-4-0

श्रीगजवदनाय नमः श्रीगुरुभ्यो न
मः ।। अथ लहरीवाडवानलभूमि
का प्रस्तूयते ।१ यद्भारतं सकलै
श्शत्रुभूतमासीन्माय्यास्यथोऽवि
चलनाङ्घ्रिभक्तितश्च काले
नयेन परिहृति मनाथितस्त्वका
लमेव कुटिलमुपातोऽस्मि
पूर्वम् ।।१।। वात्स्यायनादिमुनि
वर्ण्यनिखिलसूक्तं ज्ञानप्रसू
नललितां सुकृतास्यवल्लीम्
दुस्तर्कतीक्ष्णविषमानलधू
यमानां शीतैः सुतर्कसलिलैः
परिषेचयामि ।।२।। परिव्रजन्तं
परित्यक्तलं काषायवासः
परिधानपूर्वम्, अधर्मसक्त
लसमयं सुधर्मं निरीक्ष्य देवोऽ
वतार भूमिम् ।।३।। = ❀ = ।।

तदीयवासः परिहृत्य तस्मात्पु
नः स्वयन्तत्परिधाय शम्भुः । स
धर्म्मशास्त्रं परिहन्तुकामोदधा
रश्रीशङ्करनामधेयम् ॥४॥ भ
यदीयदुर्धर्षसुतर्कपङ्क्तिभिर्ने
ते पिनाशं विमतास्य शास्त्रविनि
कुतर्कवाजी हि पुनस्तदङ्कुरः
स्वकीययुक्त्यग्निरसेन धक्ष्य
ते ॥५॥ उपासनाः सात्विकवृत्ति
पोषकैर्व्यधायि ह्येषु मुनिभिः
पुरातनैः । अकारणं मांससुरा
दिवस्तुभिर्विधीयते शिष्टवि
रुद्धमानवैः ॥६॥ वन्यैः पुष्पफ
लैस्तथा सुसलिलैर्विभक्तिभिः
कार्यं मुदा पूर्वैस्तादृशपुष्पप
त्रसलिलैर्देवा उपास्यन्त वै,

वाचस्पत्ये कोशे पर्य्युरपि नामसु
पठितः । पं० १२

मद्यं मांसमथव्यवायमधुना
धर्म्यं बुवद्भिर्मुधा देवोपासनता
प्यहो खलजनैस्तैरेव निर्दिश्य
ते ॥७॥ कुधर्मशास्त्रोपरिरो
पितोऽयं कुतर्कवापीसलिलै
स्सिक्तः। न भारतं स्वीयफलैः
प्रलोभ्य नयेत्कुमार्गमरिभि
र्घतेऽतः ॥८॥ विहाय धर्मं प्र
तिषिध्य शुद्धिं पीत्वा सुरां संह
ततत्वबुद्धिम्। अरे विमुक्तिर्य
दि लब्धुमर्हा कुतस्तदा कुत्सि
तकृत्यगर्हा ॥९॥ स्थित्वास
यनि सुदृढवीरनृपतेः सूनोर्हु
दा राष्मनः। विश्वेशाद्धनतत्पर
स्य विदुषः श्रीनारसिंहस्य वै प्र
त्यारव्यानुमदः कुकृत्यमभितः
कस्यापि विश्वेश्वरः श्रीमच्छ्री

गुरुभक्तिलब्धविभवो धत्ते तु
युत्युच्चयम् ॥१०॥ भूमिकाञ्च
प्रवक्ष्यामि लहरी बाडवानले
यदालोचनमात्रेण वामे नरम
ते मनः ॥११॥ अथैकदा ति पवि
त्रतमाया सुखोदकी प्रवाहायां
विसुद्धरघुवंशीयराजन्याधि
ष्ठितायां जम्बूनगर्यां विहरन्स
स्सर्वैरपि कृत्रिमक्लिष्टजनग
र्हितवाममतोल्लादिमार्गमनुसर
न्नतएवचेतनाधिक्यमुपलभमा
नस्तेनैव च प्रथितस्समधिग
तः। तत्रैव वैदे वाद्दैवीसम्पत्सना
थीकृतकलेवरो यतिवरो विश्वे
श्वराश्रमेति सुगृहीताभिधः प्रा
प्तो भूतल ऽचलत्स्फाटिकधर्मानुलक
मूलमुहूर्तलाभानां भिज्ञावक

स्य यति वरस्य जन ... रं पर्यै
र्णाकर्णयो रात्रि प्यामु पागमत्
अथ जम्बूस्था वि प्राः क्षत्रिया
वैश्याश्च यति वर दर्शनार्थं विह
ङ्गोऽस्ति सुरवानुभ वा थेन्द्र तत्स
मीपमुपाजग्मुः समेत्य च ग्रा
मं गङ्गं स्व र्णं स्पृ शन्ति त्या
येन वा मतन्न प्रश्न व्याजेन तदी
यमतं मति न्व परीक्षां कारयामा
सुः जम्बूपत्तन वा हा ब्य जनास्त
यति वरं प्रावोचन् भो स्वामिन्
केन चि द्वाम मार्गे सकल शिष्ट
जन गर्हितं प्रविष्टेनैकं पुस्तक
मासं प्रणीत न्तमधीत्यास्मत्स
न्ततिरपि मद्यन्देवो द्देश्य पवा
जेन पास्यति मांसञ्चात्स्यति
किं कुर्मो वयमिति कर्त्तव्य ता

मूल:। अहो अत्र हि प्रपञ्चप्रसि
द्धैर्वैदुष्यावष्टं॰ वासिनो मह्या वा
र्यो दाक्षिणात्या मैथिलाश्चा
स्मद्देशीयाश्चाभूत पूर्वं पाण्डि
त्या गीर्वाणगुरूणाऽपि श्लाघ्या
र्थेन यशोऽनुभवितुमिच्छन्तोऽ
भूवन् येभ्यो बादाहिवेङ्कुवादीना
मेन्द्रा बिमर्दीकृताश्चासन् येरि
यं राजधानी भोजराजस्य धारे
वशुशुभे, हा कालस्य कुटिला
गतिर्येन ग्रस्तं गुणिजनमण्ड
लं सकलम्, सम्प्रति भवन्तः
शरणमशरणानामस्माकन्त
दस्य ग्रन्थस्य खण्डनमात्रेणोप
कृतिं कुर्वन्तु भगवन्तः। नाधुने
न वादाहवः श्रीमतां वालेव वि
दुषां मप्राकेनैव मत्स्यन्ति ना

मनमिलैन्नामशास्त्रेणैवशालि
ण्णामस्मीकं मनो मुदमाजनि
ष्मतिऽअथमतिविरोधेबा
म्मर्थीनांबीचकारतानाह
च, अयंमत्मास्यकतिपयम्र
धानविडम्बनानिराकरणा
योद्यमो मा भून्नामगर्हणा
विषयः। यदहंहुड्रेवादिनि
वालानांव्यामोहनिराकरणा
थैवप्रवर्त्तोनत्वस्मिन्तन्त्रे
स्वमहिमानं तदीयप्रतारणा
पुस्तकेवानिर्माणमाल
क्ष्य, नहिपश्चात्योमशाके
शाशकेवाऽवगतबलतार
तम्यमुवर्त्तते, परन्त्वस्य
निसर्गएवैषयन्नसंसह
ते विपक्षमात्रमपधर्मिलो

पश्चीकृपां सतं चैव सह जस्व
भावोयदि मेऽनभिलक्षितथा
दि गरिमा कोपि लोके क्रुपथम
नुसरति स हसात न्निवर्तितु
श नीत्यस्याभे बादानर्हैः ।
तएव विदुषामुपक्षा हैं य
पेक्षा बुद्धिमान हं हन्त
मस्यामिति शम् ❀ ❀
इति श्रीमत्परमहंस परि
व्राजकाचार्य श्री महादेवा
श्रम पूज्यपाद शिष्य श्री वि
श्वेश्वराश्रम मुनि प्रणीते
लहरीवाद नले भूमिका
समाप्ता

सम्वत् १९१४
ज्येष्ठ सुदि २

श्रीगणपतयेनमः अथभाषाभूमिका ॥ विदित हो कि आजकल्ह के समयमे खलहि मद्यमांसादिमे लोगोंकी प्रवृत्तिहै अगरफिरयो उसापढ़े हुवे पुरुष शास्त्रसे सिद्ध करें तो कैसा अनर्थ होगा सो अवदेखें कि ब्राह्मणजातिके लीये कहिंभी देवताकोमद्यादिदेना नहिलिखाहे ,, देखोदेवीरहस्यमे लिखाहै ,, बलिमांसादिपूजेयं विप्रवर्जा मयेरिता तेषां किलसुरामांसैर्नोक्ता पूजानृपक्वचित् ,, अर्थ हे राजन् जो हमने बलिमांसआदि पूजाकहिहै सोयह ब्राह्मणको छोडकर कहिहै ब्राह्मणोंको मद्यमांसोंसे पूजन कहिंभी नहि है,

और श्रीक्रमतन्त्र मे लिखा है ॥
न दद्याद्ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै कदाचन वामकामो ब्राह्मणोपि मद्यं मांसं न भक्षयेत ॥ अर्थ, ब्राह्मण महादेवी के लीये मद्य कुं कोसी भी सूरत न देवे, ब्राह्मण चाहे वाम की भी इच्छा करे परंतु मद्यमांस न खावे, और देखो नीलतन्त्र पटल ७ मे लिखा है ॥ यत्रासवमवश्यन्तु ब्राह्मणस्य विशेषतस्तत्र गुडार्द्रकं दद्यान्नं वा गुड मिश्रितं, अर्थ, यहां आसव मद्य की जरूरत भी हो वहां ब्राह्मण जो है विशेष से गुड और अद्रक देवें अथवा मठामे गुड मिला कर देवे, और कालिका पुराण मे लिखा है ॥ ब्राह्मणस्तु सुरां दत्वा ब्राह्मण्याद्देव हि

सते ॥ अर्थ, ब्राह्मण जो कर दे
वता को मद्य देवे तो फिर ब्राह्म
ण नहि रहेगा ब्राह्मणत्व जाति
से खारिज हो जायेगा, और भी लि
खा है ॥ विप्राः क्षीरेण भुजस्तदि
तरे क्षीरा ज्य मध्वासवैरिति,
अर्थ, ब्राह्मण दुग्ध से देवता कुं
पूजे क्षत्रिय घृत से वैश्य मखी
र से शूद्र आसव से पूजा करे,
सो इस से ले के और भी शास्त्र प्र
माण हैं कि जो देवता के अर्थ ब्रा
ह्मण को मद्य आदि देने का निषे
ध करते हैं और सतराग जाप्त
का निषेध तो धर्म्म शास्त्रों में है हि
उसके लिखने की जरूरत ही न
हि है, और तन्त्र ग्रन्थों में यहां है
भी वहां ब्राह्मण को निषेध सा

यही किया है, और देखो मेरुत
न्त्रवासियों का मुख्य ग्रन्थ है उस
में लिखे लिखी हैं ,, चाण्डाली
चर्म्मकारी च मातङ्गी पुल्कसी
तथा श्वपची खनकी चैव कै
वर्त्ती विश्वयोनिका ॥३२४॥ कु
लाष्टक मिदं प्रोक्त मकुलाष्टक
मुच्यते कुडुकी सौत्रिकी चैव भ्रा
म्र जीवा तु रंजकी ॥३२५॥ गाय
की रजकी शिल्पी कौशिकी च त
थाष्टमी स्त्रियो मन्त्र समायुक्ताः
सम्यक्चारपालिकः ॥३२६॥
अर्थ, भंगन चमारी मातङ्गी
धी पुल्कस और मतङ्ग वन में रह
ने वाले चांडाल है कुत्ता मार कर
पका के खाने वाले की स्त्री न्योनि
ये की स्त्री मल्लानी महरी कुडकी

सौत्रिकी जुलाही, शशरी, स्त्री लारन, मरासन, धोबिन, तर खानी कमगरिनवा, कौशिकी रेशमके कीडे पालने वाले की यह सोलह स्त्री को मन्त्रोपदेश देकर रमण करना कहे हैं और शाक्त प्रमोद मे लिखा है॥ वेश्या लतागृहेगत्वा तस्याश्चुम्बनतत्परः। तस्याश्चैव मुखं दत्वा तद्रसं विलिहन्जपेत। ५८। अर्थ, वेश्याके बगीचे मे साधक जा के उसको चूमे फिर अपना मुख उसकी भगमे देकर उस भगके रसको चाटता हुवा जप करे, इसें पूर्व यह है, कि, कादम्बरी सिन्धुमध्ये सुरारिष्टैश्च सासवैः योनिक्षालित तोयैश्च योनिलि

ज्ञामृतैरपि।५५। स्वजातकुसमैः पूज्यां जपान्तेतर्पयेच्छिवाम् सर्वसाम्राज्यनामानुत्तत्वानत्वा स्वशक्तितः।५६। अर्थ, सिन्धु कादंवरी आदि मद्यों से तर्पण करे और स्त्री की योनि याने भग धोकर उसजल से तर्पण करे औरयोनि और लिंग इन दोनों का अमृत क्या है रज और वीर्य्य इन दोनों से तर्पण करे और शेष भक्षण तो वाममार्ग का धर्म्म ही है, इस से आदि लेके और भी विषये हमने ग्रन्थमे दिखलाये हैं, और विस्तार से इसके ग्रन्थ का खण्डन है और हमने कुछ अपनी तर्फ से नहि किया

क का तक्षा स्व विरोध हि दिखाये
हैं अगर हम यदि कोटि करते
तो आप लोग समझेंगे के से अ
गर इसमें कोई क है कि स्वामी
जी अत्युक्ति करते हैं तो ए
क पण्डित बड़ा सा औरएक
काशी सें मंगा कर निश्चय क
रें वोह दिखला देंगे कि शास्त्र
की तर्क विना पढ़े कैसें शंक
ना होता है अगर विद्यार्थी
कोई आ जाय तो वह कहां प
ढ़े इसलीये एक बड़ा पण्डित जरू
रहो डोगरा ब्रह्म सभा को चा
हिये कि जो इ बुद्धिघ
पुरुष रोसे ऐसे ग्रन्थ भ्रष्टमा
र्गों के प्रकाश करते हैं उन
ग्रन्थों को काशी सें सही मं

गाकर मनजूर कियाकरें और सभाको चाहिये जबरन हुक्म हैं ऐसे ग्रंथको बंद करें नहि तो इस देशकी बडी हानि है और अरब वालोंमें भी यह बात निकल चुकी है, अगर हमने एक बार यह अंडबंड सालेख खण्डन कीया है फिरभी यदि इसके उपर ऐसा लिखे तो विना विद्वानोंके प्रमाण पत्र के लेख अंड बंड समझा जायगा और हमने भर आयु अंड बंड खण्डन नहि करेंगे, इसलीये ब्रह्मसभाकाशीजीके विद्वानों से मतिमंगावे फिर चाहे प्रकृतिक राखे चाहे बन्द करावें और हमने अपनीतर्फसे की याही है इत्यलम्

(की४)

एक पुस्तक इन्हे संन्यासाश्रम
खण्डन का छपा है जिसमे संन्या
सीओं को पलव शब्दों से पुकारा
है एक ही आश्रम गृहस्थ माना
है उसका खण्डन निन्दा प्रधान है
इसलीये पीछे कहा जायगा क्यूं
कि खण्डन देना बहुत सुगम है उस
का समझना अच्छे पुरुषों को कठि
न होता है अब उसका सिद्ध कर
ना कितने वेद वेदांग पुराण इति
हास धर्मशास्त्रों की व्यवस्थायों
सें होगा बड़ा भारी पुस्तक बने
गा धन कितना चाहिये क्यूं कि
वर्णाश्रमों को वेद ब्रह्म शास्त्र पु
राण इतिहास धर्मशास्त्र आदि
सें कहा हुवा होने सें, और जो ये
कहते हैं संन्यासियों ने कर्म छो

दिये तो पूछें कौनसे यदि कहें य
ज्ञआदि तो वह तो गृहस्थों के भी
कोई २ के हैं आहिताग्नि हैं ही कोई २
नहि, और जब योग उपासना दि
निष्काम कर्म निशा दिन संन्या
सी भी कर्त्ते हैं और दो कांड वेद के
यथा संभव संन्यासी अनुष्ठित
कर्त्ते ही हैं तीसरे कर्मकांड का भी
भार इन्हों के शिर धर आप रवाली
हुवा चाहते हैं हां उपासना मद्य
मांस सें नहि कर्त्ते शायद इसी सें न
रकवास हो तो हो इसलीये संन्या
सी यो अग्निसाध्य कर्म त्यागे क
हना गृहस्थ नें नहि त्यागे कह
ना निर्गल है और रहा यज्ञोप
वीत सो जब त्रैवर्णिकों का जन्म
होता है तो साथ वह नहि होता

है किन्तु अष्ट वर्ष पर वेद वाक्य
सें कंधे उपर रखा जाता है उससें
त्रैवर्णिक संस्कृत होते हैं तो सोभी
संन्यासीयों का संस्कार होता ही
है उसका त्याग भी वेद वाक्य सें ही
है और ज्ञान निष्ठा जबतक परि
पक्व नहि तबतक अति त्याग भी
नहि किन्तु स्कन्ध उपर नहि द
ण्ड के साथ ब्रह्म मुद्रा में है और द
ण्ड में त्रयोदश १३ यज्ञोपवीत हैं
छः ६ की मेखला भी होती है औ
र एक दण्ड भी संस्कारों में हैं यज्ञो
पवीत कपास का धागा होता है
दण्ड पलाश और वंश के काष्ठ
का होता है वेद में एक मन्त्र यज्ञो
पवीत का है एक ही ब्रह्मदण्ड का
मंत्र है सो संन्यासी के पास दोनों

है गृहस्थके पास एक है तो फि
र तुम यज्ञोपवीत हीन कहते हैं मो
ल्जा शर्म्म उठाली, रही शिखा उ
सका त्याग तो हो ही नहि सकता
क्यूं की तुम अपनी शिखा उखड़ा
के देखो दूसरे दिन नई हो जावे
गी दूसरे जिस गृहस्थका शिर
गंजा होवे वह आपकी दृष्टि सें
पतित होकर नरक मे जा गिरेगा
दूसरे शिखा त्याग यदि शास्त्र वि
हित ना हो तो भारत खण्ड के वडे
वडे विद्वान यज्ञ होमादि करने
वाले संन्यास कर्ते क्यूं त्यागते
हैं उस शिखा यज्ञोपवीत का तुम
को क्या भार है जब की कंथा द
ण्ड कमंडल का भार उठाते हि हैं
आपने मण्डन मिश्र वडे कर्मे ठ

उनकी तर्कें आचार्य को दी हुई तौ लिखि तो वह नहि ख्याल कीया की १८ मे दिन स्वयंभी शिखा यज्ञोपवीत छोडकर कंथाधारी होगये थे जिनके बराबर कर्म का मंडन करनेवाला मा हिष्मतीपुरी छोड सारे भारतवर्ष मे भी नहि भया है जो स्वयं ब्रह्मा का अवतार थे आपने संन्यासियों को कर्म त्यागसें नरक पातक हा जिसकर्म को आज गृहस्थ भी त्याग चुके हैं सो भला संध्या कर्म के करे विना विहित के त्यागमात्र सें नरक कैसे होगा जेकर कहें विहित त्यागसें पाप होगा उस पापसें नरक होगा तो भला अभावसें भाव जो पाप सो कैसें

होगा जो कर इतने जपयोगादि होते भी संन्यासी नरक वास करेंगे ऐसा ही निर्भर आपका, तो इतने क्रोड़ मनुष्य और बावन लक्ष साधु में दण्डी कुल भारत की मर्दुमसुमारी में तीन सौ (३००) के लगभग हैं उन में भी दो सौ आसन्न मृत्यु होगा जहाँ इतना मनुष्य इतना साधु नरक में जायेगा उतने में सौ (१००) दंडी संन्यासी को नरक में भी रहने नहि देंगे वहां तो वेचारे तुमारे से भिक्षा भी नहि मांगेंगे बैठने तो देंगे क्या नहि, नहि, क्यूं तुमारे बाप जर खरीद थोड़े हैं बेचारे सौ (१००) दण्डी को भी जगह नहि मिलेगी अच्छा तुम ही

रहियो दंडी भारत मैं ही आजा
येंगे, इन्होनें गालिदे के थोड़ा
रहना है, आपजो लिखते हैं
यह आश्रम पर धन पर स्त्री हर
णके लीये है भला अपना धन
स्त्री छोड़कर तो संन्यास करते
हैं तो फिर पर धन पर स्त्री हर
ण क्यूं वांता श्री होगे और यह
सुवर्ण रजत को छुहते ही न
हि फिर स्त्री बेवकूफ हे जो इ
तने को टिग हस्थ चटकीले रं
गीलों छोड़कर भीख मांगनेवा
ले के पीछे लगेंगी बूढे के ध
न्य हैं आपकी बुद्धि, ऐसी
बुद्धि के ही प्रभाव पर वेदशा
स्त्र पुराण इतिहास धर्मशास्त्र
आदि मे ऋषि मुनि संमत

चार वर्ण और चार आश्रम
जिसके आप लिखते हैं एक
गृहस्थ ही है और नहिं, औ
र कहिं की ईंट कहीं का रोडा सू
त्र की सी और विषय के हैं वह
संन्यास खण्डन में अर्था जो के अ
र्थ का अनर्थ कर अन्धाधुन्ध
मचा दीया अच्छा पहिले गृह
स्थलहरी का खण्डन होगा प
श्चात् इसका मण्डन होगा, अ
पने घर में सब खण्डन करते हैं
कोई और माने तो जाने और का
शी के विद्वानों को तो लिखते हैं
वो हट के परईसा होना मन जू
र करते है उनको आप विद्व
मानते हैं हम नहि कुछ सम
झते हैं हम उन्हें कूप मण्डुक कह
सकते है फिर क्या होः

ओ३म्

लहरीबाड़वानलः

श्रीगणेशायनमः ॥ वन्दे गौरीसुतं देवं निरञ्जनमहोमहः सकलाभीष्टसिद्ध्यर्थमर्चितञ्चसुरासुरैः ॥१॥ श्रीमत्कैलासचंद्राख्यान् भट्टाचार्यशिरोमणीन् नत्वाप्रस्तूयतेग्रन्थो लहरीबाड़वानलः ॥२॥ प्रणम्यश्रीमहादेवं गुरुंशंकररूपिणम् पुन्दोबराहितेवेदैःकृताधिकपरिश्रमम् ॥३॥ अथकेचिद्वाममार्गे सिद्धिसत्वात्सचसेव्य इत्याहुस्तन्न प्रसिद्धमेवैतदिच्छायां कान्चित्कीरशि यथाऽयस्कान्तमणौजड़ेपि लोहाकर्षणरूपासान्वचिद्रूपस्यात्मन इच्छाना नाविधेषुपदार्थेषूपसीणशक्तिः ॥ तामिच्छामनेकपदार्थेभ्यो निवर्त्यैक

त्वलक्ष्ये कुर्वतो वर्द्धते च तस्यां शक्तिः। अतएव श्रुतिष्वात्मदर्शी भवनं विहितम्। नेह नानास्ति किञ्चन, एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेति; , पातञ्जलेचोक्तम्, योगश्चित्तवृत्तिनिरोध इति सूत्रे निरोधोपायमपि योगविदो वदन्ति, यथा तत्रैव, यथाभिमतध्यानाद्वा इति सूत्रे, ततश्चेच्छायामतिशयो जायते, तेन यद्यदिच्छति तत्तदेव संपद्यते, तस्मान्न सिद्धिः प्रामाण्यप्रयोजिका, यथा मिस्मिरेजम ग्रन्थेषूक्तस्यैकत्र कृष्णविन्दावेच्छा निरोधेनेच्छाशक्ति वर्द्धनस्य नानाविधाश्चर्य्यजनक कार्य्यस्य नहि धर्म्मे प्रामाण्यम्, नहि तत्र मन्त्रादिना सिद्धिः। किन्त्विच्छा निरोधमात्रादेव, अतएव चाण्डालादिष्वपि पापिषु सिद्धिसत्वा

न्नसिद्धिर्धर्म्मप्रामाण्यप्रयोजिका
तद्वद्वाममार्गेकाचिच्छक्तिरस्तिकि
न्त्विच्छायामेवसेति व्यर्थमेवकुम्भी
पाकनरकपातजनकं वामादिनि
षिद्धमार्गेणेच्छाशक्तिसंपादनम्,
अतः श्रुतिस्मृतिविहितमार्गेणेच्छा
शक्तिः संपादनीया सैव धर्म्मजनि
का, नतुश्रुतिस्मृतिविरुद्धमार्गेणे
च्छाशक्तिर्धर्म्मजनिका। (चोदनाल
क्षणोऽर्थोधर्म्मः) इतिजैमिनिसूत्रा
द्वेदप्रतिपाद्यप्रयोजनवदर्थोधर्म्मइति
लक्षणलाभात्, तस्माच्छूद्रयव
नचाण्डालादिप्रणीत ग्रन्थेष्वपिसि
द्धेरविशेषान्नसिद्धिर्ग्रन्थप्रामाण्य
प्रयोजिका, नवातद्ग्रन्थप्रतिपाद्य
कर्म्मणांधर्म्मजनकत्वमिति प्रत्युत
मद्यमांसादिविधायकत्वाद्दुर्गतिप्र

योजकत्वमेव अतएवयस्मिरणी
साधनादीनिशिष्टैर्नगृहीतानितद्व
द्वामतन्त्रादीन्यपिनशिष्टैर्गृहीता
नि वेश्यायोनिक्षालिततोयतर्पणा
दि विधायकत्वात् अतएवास्य
खण्डनमारभ्यते ॥ अथवाममार्गी
यतन्त्रग्रन्थेषु स्मृतित्वव्यवस्थापना
तद्विरुद्धयांश्च स्मार्त्तत्वेन विधेयत्वेऽप्या
दनाय प्रथमतस्तत्स्मृतिप्रामाण्यवि
षयमुत्थापयति, अवश्यं हि सर्वैः
यत्तु सर्व वेष्टनस्य पशुबन्धनस्यान
वेष्टन श्रुतिविरुद्धस्येत्युक्तमूतन्न यू
पेपशुम्बध्नीयादिति विधिविहितब
न्धनस्यवेष्टनेसत्यपि रज्ज्वादिनाव
स्त्रोपर्य्यपिबन्धनसम्भवात्तद्विरोध
प्रदर्शनस्यायुक्तत्वात्, किन्त्वौदु
म्बरीं स्पृष्ट्वोद्गायतीतिस्पार्शनश्रुति

विरोधः प्रदर्शनीयः सर्वविष्टनेसति स्पर्शसम्भवादप्रमाणमितिभाष्यम् तत्रैवं विचारितम् (अष्टकाः कर्त्तव्या इत्यादीनि मन्वादीनांस्मरणानिस्व मूलभूतां श्रुतिमनुमापयन्तिवैदैक प्रमाणकेषुसर्वज्ञेषुतेषुभ्रमविप्रलम्भ कत्वादिदोषादर्शनात् हश्यन्तेचक्व चित्शाखान्तरेपि (प्रयाजाःकर्त्त व्या) इत्यादिस्मृतिमूलभूताः श्रुत यः) तत्सामान्यात्सर्वमपिस्मरण न्दृष्टमूलकमेव (अतिरात्रेषोडशि नंगृह्णाति नातिरात्रेषोडशिनंगृह्ला ति) इत्येकत्रानुपसंहरणी यस्या प्यर्थद्वयस्य वेदे दर्शनात्सर्व वेष्टन स्मृतिमूलभूतश्रुतेरत्यन्ताभावस्या स्मदादिभि रल्पज्ञजनै र्निश्चेतुमश क्यत्वात् तत्सामान्यादितरेषु तथा

त्वमितिन्यायेनैकस्याः स्मृतेरप्रामाण्ये
सर्वासामपि तथात्वापत्तेश्च नासा
वप्रमाणम् किन्तु यावन्मूलदर्शि
नं नास्ति तावदर्थानुष्ठानं न कर्त्तव्य
मित्येवंपरं (विरोधेत्वनपेक्ष्यंस्याद
सतिह्यनुमानम्) इति सूत्रम् (हेतु
दर्शनाच्च) इति सूत्रे वैसर्जनहोमी
यं वासोऽध्वर्युः परिगृह्णातीति स्मृ
तेः श्रुतिविरोधित्वेपि लोभमूल
कत्वस्यैव हेतोर्दर्शनादप्रामा
ण्यमिति भाष्यम् स्मृतित्वावि
शेषाच्चाक्यस्मृतेरपि प्रामाण्यं
प्रसक्तम् तेषु प्रत्यक्षेण वेदवि
शेषदर्शनान्न तस्या वेदमूल
कत्वं कल्पयितुं शक्यमिति
वार्त्तिकम् तस्मात्सश्रुत्वन्ध
न स्यान वेदन श्रुतिविरुद्ध

स्येति कथनमत्यन्तमनन्वितम्
अपितु स्पार्शनस्मृतिविरुद्धमे
वक्तव्यम् पृ०१पं०१३ तस्यबन्ध
नस्थानावच्छेदेन सर्वांशेष्वपि
तत्येति तदर्थकरणे तु विरोधा
भावेन प्रामाण्यमप्यनुज्ञातमि
त्युक्तम्* तत्तु विनायकं प्रकुर्वा
णोरचयामास वानरमित्याभा
णकमनुसरति, बन्धनस्थाना
तिरिक्तस्थानावच्छेदेन सर्वांशे
ष्वपि तत्ये तदर्थकरणे तु भवेद
पि विरोधवारणम्, तदर्थे तु प्र
स्तुतविरोधपरवस्यापि तः अ
हो कीदृशोऽयं विभ्रान्तः। ननु
बौद्धतन्त्रे माहिंस्यात् सर्वाभूता
नीत्यस्माद्वेदवाक्याद्विरुद्ध
स्याहिंसाधर्मस्याहिंसापरमो

धर्म्म इतिवाक्यविहितत्वात्तदपि प्रमाणंस्यादितिचेन्न वेदप्रतिपाद्यस्यैवाहिंसादेर्धर्म्मत्वात् नबौद्धविहितस्यधर्म्मत्वं (चोदनालक्षणोर्थोधर्म्मः) इतिजैमिनिसूत्रात् । चोदनाहिधर्म्मेप्रमाणंचोदनाच वेदैकदेशोविधिभागः मन्त्रस्मारितकर्म्मवत्कलत्वत्वमपितस्यैव नतुबौद्धविहितस्याहिंसादे रिति यथायंगोदकं श्वदृतिस्थञ्चाण्डालाहृतमपेयम्, यथावाविप्रयुक्तान्नमग्राह्यन्तद्वद्बौद्धविहितमहिंसादित्याज्यम्, तस्माद्बौद्धग्रन्थस्थवाक्यान्नोपादेयोधर्म्म इत्याह वार्त्तिकेभट्टपादः। ननुवामतन्त्रदूषणप्रकरणे किंशाक्यादिग्रन्थदूषणेनेतिचेन्न, ग्रन्थकर्त्रा

ग्रेवौद्धमतस्यापिस्थापितत्वात् ननु
वामतन्त्रेसौत्रामरायांसुरांपिवेदिति
वेदवाक्याविरुद्धस्यमद्यस्यविधाय
कत्वात्तदपि प्रमाणंस्यादितिचेन्न
सुरापदस्य तत्रसोमवल्लिरसपरत्वा
त् सुष्टुरमन्तेदेवाअनयेतिव्युत्प
त्या अतएवपूर्वंदशापवित्रेणग्रहं
सम्मार्ष्टि। इतिग्रहनामकषोड़श
पात्रेषुस्थापितस्यसोमवल्लीरसस्य
वस्त्रदशायासम्मार्जनंविहितम्।
अतः किंविजानीमः सुरापदंयोग
वृत्त्या सोमवल्लीरसम्बोधयति, न
रूढिवृत्त्यामद्यपरमिति, किंचरा
ज्ञापेयानब्राह्मणेन, किंचपानम
पिब्राह्मणेनैव, कुत्रचिद्विहितञ्च
दानं नतद्ब्राह्मणकर्त्तृकंब्राह्मण
स्यतु सर्वथैवनिषेधः। तथोक्तम्

कालिकापुराणे, ब्राह्मणश्चसुरां दत्वा ब्राह्मण्यादेवहीयते अतए वनीलतन्त्रे सप्तमपटले यत्रासव मवश्यन्तु ब्राह्मणश्चविशेषतः तत्रगुडार्द्रकन्दघात्तकं वागुडमिश्रित म्।१। मधुना पायसंचैवक्षीरं साज्यं चणार्करम् बलिंदद्याच्चतारायै आसवंच प्रशस्यते।२। यदि ब्राह्म णस्यविधिश्चेत्तत्प्रति निधि विधा नं व्यर्थस्यात्, किंचब्राह्मणश्चवि शेषत इति विशेषपदस्वारस्यात्क्ष त्रियस्यापि प्रतिनिधिकरणं विधी यत इति ज्ञायते एतच्चाग्रे विस्त रात्स्फुटी भविष्यतीत्युपरम्यते पृ०२ पं०६ वेदसाक्षात्कृतस्यार्थ स्येति अत्र वेदसाक्षात्कृतस्या र्थस्येत्येवमुक्ते पुनः आवरणप्रत्य

क्षविषयशाब्दजनितार्थबोधस्यस्म
रणमित्यसङ्गतंप्रयुक्तंकीदृशोऽयं
विस्मरणशीलोयस्त्वोक्तवाक्यस्या
र्थं नावधारयतिकापुनः प्रत्याश
परोक्ताभिप्रायज्ञाने वेदश्रुतस्या
र्थस्यस्मरणंस्मृतिरितिघटतेऽर्थ
बोधस्यस्मरणंस्मृतिरितिविरुद्ध
मेवअर्थस्यबोधस्तुस्मृतिरूपस्त
थाच स्मरणस्यस्मरणंस्मृतिरि
त्यर्थः स्यात्सचासंगतएवेति, किं
चवेदस्तुस्वयं शब्दस्सोपिवर्णा
त्मकः सकिंपुरुषवद्वर्णानुच्चारय
तियेनश्रावणप्रत्यक्षविषयेतिव
दसि पृ. २ पं. ८ स्वमूलभूतार्थे
ति, अत्रापिस्वार्थबोधकमूलवेदा
नुमानद्वारेतिपाठः स्वमूलभूतार्थ
बोधक वेदानुमानद्वारेतिवापाठः

शोभते पृ॰२ पं॰१४ इत्यादिनामन्वा
दौस्मृतावपीति अत्रमनुरूपादौस्मृ
तौऽपि इतिपदच्छेदे मनुरादिषु
रूषेस्मृतिपदव्यवहारः प्रतीयते ऽ
तोमन्वादि स्मृतावपीतिपाठः सा
धुः पृ॰२ पं॰१७ इतिकेचिदिति॰
अत्राकृतधि त्वकुधित्वादयोधर्म्माः
केष्वापाद्याः स्मृतिशब्दार्थः प्राङ्
निर्णेतव्य इत्यारभ्य इतिकेचिदि
त्यन्तन्तु धर्मशास्त्रपुराणतन्त्रादि
षुस्मृतित्वव्यवस्थापने नतेषुस्मृति
व्यवहारकर्त्तार एवोपदिष्टा नहि
तत्रान्येनास्तिकादयः पूर्वप्रदर्शि
ताः येनकुधित्वादयोधर्मास्तेष्वेवा
पाद्यास्युः किन्तुमनुयाज्ञवल्क्यादय
एवकुधिय इतिवदासे अहोस्ते
रवनशैली स्थूलत्वापादनमपि

स्मृतित्वव्यवस्थापनविषयएवस्वीक्रियते पृ॰ ३ पं॰ १ वेदार्थस्मरणत्वस्य पुराणतन्त्रधर्म्मशास्त्रदर्शनसाधारणयात् अत्रतन्त्रपदं वामवुद्धयवनादि तन्त्रग्रन्थातिरिक्तपरम् वाममार्गीयग्रन्थेष्वग्रेस्मृतित्वखण्डनात् पृ॰ ३ पं॰ ७ म्लेच्छानांभवादृशानामित्यत्रम्लेच्छत्वापादनमपि धर्म्मशास्त्रेषुस्मृतित्वस्वीकर्त्तृषु वा व्यवस्थापकोपहसनीयस्यात् पृ॰ ४ पं॰ २ मनुस्मृतौ क्वापिमन्त्रकलापो भवतामिति अत्र मनुस्मृतौ मन्त्रकलापंकथमुत्प्रेक्षसे तत्र किं मन्त्रप्रतिपादकत्वमस्ति, पूर्व पृ॰ ३ पं॰ ११ शक्नुतेत्यस्यस्थाने शक्नुवतेत्येषापदाशुद्धिः। अत्र पृ॰ ४ पं॰ १७ चाण्डालत्वापात इत्यस्यस्थाने

चण्डालत्वापात इत्येषापराशुद्धिः

पृ॰ ४ पं॰ ११ वृहद्धौत्तमीयेपञ्चदशा ध्याये नावतुन्यन्तियेविप्रानिवृ त्ताश्चपशोर्वधं तेयान्तिनरकंघोरं रौरवं तमसावृतम् शतवर्षसहस्रा णि तत्रस्थित्वानराधमाः कृमि भिर्भक्ष्यमाणाश्च तिष्ठेयुः पूय शोणिते यूपास्तु उक्तसंस्कारै रौषध्यः पशवस्तथा यजमानेनस हिताः स्वर्गंयान्तिनरेश्वरेत्यादीति ॐ अत्रदेवतार्थं मांसनिषेधे रौर वनरकप्राप्तिःप्रतिपादितेत्युच्यते अस्तुसाच यागनिषेधाभिप्रायेणै वोक्ता। नतुवाममार्गनिषेधाभिप्रा येण वाम मार्ग निषेधेतु स्वर्गप्राप्ति रेव ननुकथंयागनिषेधेसेतिचेच्छृ णु यूपास्तुउक्तसंस्कारै रौषध्यः प

शवस्तथेतिवचनात् । नहियूपादय
स्सामान्यदेवतापूजनेविधीयन्ते
येनयजमानेनसहस्वर्गंगच्छेयुरि
ति नह्यत्रवामिनोयजमाना विव
क्षितास्तेषांनरकगमनस्यसाधनी
यत्वादितिभावः पृ.५ पं.१ सीत
लप्रसादाद्युच्छिष्टे त्यत्रदान्त्यस
कारस्त्वदीयदन्तोच्छिष्टः पृ.५ पं.७
वामादिपदवींनकामपिद्रष्टुं क्षमधं
काधिरोढुमिति ॐ सर्वधर्म्मवहि
ष्कृतानामित्यादि ॐ हन्तभोः ॥
सर्वधर्म्मवहिष्कृताजनाः पूर्वोक्ता
नां शैचादारभ्य वैदिकस्मार्त्तपदवी
नांदर्शने ऽधिरोहणेन्वाक्षमाभव
न्तु किंपुनर्वामादिपदवीमधिना
धिरोहन्ति नत्रतुसर्वधर्म्मवहिष्कृ
तास्तत्राधिकारिणोभवन्ति वामादी

त्यादिपदाद्बौद्धयवनकौलादयस्स
र्वे निषिद्धमार्गाग्राह्याः नहितत्रवै
दिकस्मार्त्तकर्म्मकर्त्तृणामधिकारः
मीमांसकैर्धर्म्मस्वरूपमिदमुक्तम्
फलतोपि यत्कर्म्मनानर्थेनानुविध्य
ते केवलं प्रीतिहेतुत्वात्तद्धर्म्मइ
तिकथ्यते ॐ श्येनादिव्यावृत्त्य
र्थंफलतइति, तस्यहि नधर्म्मत्वं
श्येनेनाभिचरन्यजेतेति वेदबोधि
तत्वेपि तत्फलस्य शत्रुवधस्यानर्थ
हेतुत्वात्, पशुबीजादिवधजन्य
दोषेणाधर्म्मस्वल्पः संकरः स्नीतिसां
ख्या मन्यन्ते, तन्निरासायकेवल
मिति, माहिंस्यादिति निषेधोहि
रागप्राप्तायाहिंसाया अनर्थहेतु
त्वंद्योतयति नतु (अग्नीषोमीयं
पशुमालभेत) इति विहिताया

विधिस्पृष्टे निषेधानवकाशात्
परिहृत्यापवादमुत्सर्गाः प्रवर्त्तन्ते
इति न्यायेन निषेधशास्त्रं केवल
क्रं हिंसां परिहृत्यैव प्रवर्त्तत इति
न धर्मफले दुःखलेशसङ्करोऽ
स्तीति सूक्तं केवलमिति ध
र्मे च प्रमाणान्यपि प्रसिद्धानि
वेदोऽखिलो धर्ममूलं तद्विदाञ्च
स्मृतिशीले धर्मसमयः प्रमाण
म् तथा चोक्तम्, पुराणन्याय
मीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्म
स्य च चतुर्दश इत्यत्र नामबु
द्धादितन्त्रं प्रामाणिकेष्वेषु परि
गणितम्, तस्मात्कथमेवं स्मृ
तिः च व्यवस्थापनं कर्त्तुं शक्यम्
न हि पुराणेतिहास धर्मशास्त्र

वेदाज्ञान्यपहाय स्मृतिपदव्यप
देशं भवितुमर्हति, कुतो वेदवि
रुद्धे वाममबुद्धादितन्त्रे प्रामाण्य
मभ्यनुज्ञातं स्यात्, न हि योनि
क्षालिततोयतर्पणादि विधाय
के योनिमुखप्रक्षेपपूर्वकं ज
प विधायके च वामतन्त्रे मद्य
मांसादिभक्षके व्यभिचाराभि
रनादिपापवासनावासितान्तः
करणैर्धूर्त्तैः पुरुषापसदैः प्रणी
ते स्मृतित्वं प्रामाणिकत्वञ्च
सम्भवतीति, यथा हि डाकिनी
मन्त्रसाधनादिषु म्लेच्छमन्त्र
साधनादिषु च, एतदग्रे सवि
स्तरं स्फुटीभविष्यतीति, न
नु वामादितन्त्रेषु प्रामाणिकत्वं
यदि न स्यात्तर्हि सिद्धिर्न स्यादि

तिचेन्न सिद्धिमात्रस्य प्रामाणिक
त्वाप्रयोजकत्वात् सिद्धिस्तु प
र्वतेदेशे चाण्डालादिष्वपि द
श्यते वामादितन्त्रप्रतिपाद्यासि
स्तु दृढैव ता प्रत्युताशुद्धजनारा
ध्या एव तान्वक्ति योप्याराधन्ति
स्तुभेष्टसम्पादनसामर्थ्यन्तासु
नास्तीति प्रसिद्धम् एवमेववा
मिनोपि न स्वस्य परस्य वाधन
पुत्रादीष्टसाधकत्वम् किन्तु
द्विषन्तं पुरुषं ज्वरमारणोच्चाट
नादिभिः पीडयन्तीति परानिष्ट
सम्पादनं विना न तेषु सामर्थ्य
मिति पापहेतुत्वान्नास्ति धर्मे प्र
माणम् यदि कस्यचिद्वामिनः
सङ्गात्कुमार्गमनुप्रविष्टस्सन्म
ङ्गलीयात्तर्ह्यवश्यं मद्यादिकं

पेयं स्यात् न पिबेच्चेत्तदैवस्यानि
ष्टं स्यादिति सकृदाराधितापि सा
देवता तावत्तं परित्यजति याव
त्कुम्भीपाकाख्यं नरकं पतति
पौराणिका वैदिकाश्च दक्षिणाप
थवर्तिनस्तान्त्रिकाश्च वस्यैहि
कसुखार्थमपि तामुग्रां तिक्रूर
देवतां नाराधयन्ति किम्पुनः पर
स्यानिष्टसम्पादनार्थमिति पर
स्यानिष्टमपि सान्तौ चाराच्युत
स्य स्वतोऽपि धर्मस्य मर्यादिया
त्ब्राह्मण्यहीनस्यैव न तूत्कृ
ष्टस्य सन्ध्यागायत्रीजपाद्यनु
ष्ठायिनो ब्राह्मणस्य तदन्यस्य
वाऽनिष्टं सम्पादयितुं क्षमा इति
किञ्च वामादिमार्गे सिद्धिर्भव
तु मा वा पातत्यन्तु ध्रुवमेव नर

दिवलिदानान्मद्यादिपानाच्चाण्डालीगमनाद्यनुष्ठानाच्च तस्मान्नजातु वामादिमार्गंसेवेत तत्सेवनेच पापोत्पत्तेः अतस्तन्त्रपदं वामादिनिषिद्धतन्त्रातिरिक्तनारदपञ्चरात्राद्यार्थतन्त्रपरम् तत्र प्रमाणमप्यस्ति भागवतादिपुराणम् प्रथमस्कन्धे तत्रावतारप्रयोजनेषु नारदावतारप्रयोजनम् तन्त्रंसात्वतमाचष्ट इत्युक्तम् तत्र चतुर्व्यूहोपासनं विहितन्तच्च सर्वास्तिकशिरोधार्यम् तच्च क्रमभिप्रेत्यचैकादशस्कन्धेभगवद्वाक्यमुद्धवम्प्रति, वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इतिमेत्रिविधोमखः वैदिकीतान्त्रिकीदीक्षामदीयव्रतधारणम्, इति,

तस्मादस्मदुक्तार्थतत्त्वोपासनेनै
वसकलकार्य्यसिद्धौ किम्पुनः
पातत्यहेतुनावामोपासनेन
परानिष्टसम्पादनमात्रप्रयोज
नेनेत्यधिकं सप्तदशहेतुनिरू
पणेवक्ष्याम इति पृ०५पं०१३
समीक्षितव्य इति वक्तव्ये ह्रस्वी
करणं व्याकरणानभ्यासं व्यन
क्ति, पृ०६पं०७ अनधिगताबा
धितचित्तवृत्तिः प्रमाणमिति भ
ट्टाद्य इति ✱ अत्रानधिगतत्व
मबाधितत्वञ्च चित्तवृत्तौ विव
क्षितमहोभट्टाभिप्रायवैलक्षण्यम्
अत्र त्वर्थे विशेषणमुभयमतोऽ
र्थपदघटितमेवलक्षणंस्वीका
र्य्यम्, तथा चानधिगताबाधि
तार्थविषयकचित्तवृत्तिः प्रमा

म्। अतएसाङ्ख्याचार्य्यैः। चित्तस्यबाह्यवस्तूपरागात्तद्विषयासामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्यविशेषावधारणप्रधानावृत्तिः प्रत्यक्षमितिविशेषलक्षणमप्यर्थघटितमेव, इन्द्रियार्थसन्निकर्षानन्तरंजायमानाऽयंघटइत्याकाराचित्तवृत्तिस्तस्यायस्तत्तदर्थोपरक्तचित्तवृत्तिविषयकोऽहंघटंजानामीत्याकारोऽनुभवः स प्रमाणभूतायाश्चित्तवृत्तेःफम्, अतएवपतञ्जलिःसूत्रयाञ्चकार, चितेरप्रतिसङ्क्रमायास्तदाकारापत्तौस्वबुद्धिसम्वेदनम् , सां॰पा॰४सू॰२२।अत्रतदाकारापत्तिश्चितेरर्थोकारापत्तिरित्यर्थःइदंच

रितमेवलक्षणमिति, पृ. ६ पं. १३
सम्वादिसफलयोरन्यतरदनर्थ्यी
कन्तयोरैकार्थ्यात् पृ. ७ पं. २ ता
दृश ज्ञानपूर्वकधर्म्मोपदेशत्वं
वेति विकल्पस्यायुक्तत्वमार्थज्ञा
नाभिलापकशब्दप्रयोगत्वस्यै
वताद्दशधर्म्मोपदेशत्वात् कीद
शोयं विस्मरणशील: स्वोक्तार्थ
मपिनावधारयति पृ. ७ पं. ३
उभयत्रतन्त्रपदंवामादितन्त्रान्या
र्थतन्त्रपरम् अत: परं पृ. १० पं.
१२ पर्य्यन्तमन्यत्र सर्वत्र कृतव्या
वस्थमविरुद्धं विषयं नतत्प्रति
पादने प्रयोजनमित्युपरम्यते पर
न्तु वामतन्त्रे स्मृतित्वं निरस्तमेव
अत्र वामतन्त्रस्यैव स्मृतित्वाभावो
नतु नारदपंचरात्रादितन्त्रेषुप

स्तु तेषामपि स्वविषये प्रामाण्यं
नतु धर्मशास्त्र पुराणादि वद्धर्म्म
मात्रे प्रमाण्यं आर्षतन्त्रेषु प्रमाण
मस्ति भागवतादि पुराणम् आर्ष
तन्त्राणि श्रुतिस्मृत्यादिवन्नान्यत्र
प्रमाणानि किन्तु स्वविषये एवे
तिभावः वामतन्त्र बौद्ध तन्त्रय
वन कौलतन्त्राणि वेदविरुद्धानि
शिष्टैरस्वीकृतानीति न स्वविषये
पि प्रमाणानि। सम्प्रति भैरवीच
क्रम भिहितन्तत्र तत्प्रदर्श्यते ॥
तत्रोक्तम् ॥ प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे
वर्णा द्विजातयः निवृत्ते भैरवीचक्रे
सर्वेवर्णाः पृथक् पृथक् १ मातृ
योनिं परित्यज्य विहरेत्सर्वयोनि
षु अस्यार्थः। वामिनः कुत्र
चिदिह सिद्धस्वपत्नीभगिन्यादि

भिः समेत्य शूद्राश्चाण्डालाश्च प
तिता ब्राह्मणाश्चैकीभूय चक्रं
विरच्य तत्र भैरवोच्छिष्ट चाण्डा
ल्यादीन् मद्यमांसादिभिः संपू
ज्य तत्र वेश्यादीनां भगपूजां च
विधाय स्वस्वपत्नीभ्यो मद्योच्छि
ष्टं गृह्णन्ति वेश्याभ्यो प्युच्छिष्टं गृह्ण
न्ति च तस्मिन्भैरवीचक्रे प्राप्तानां
चाण्डालादीनामपि द्विजत्वमेव
स्वीकुर्वन्ति पश्चात्स्वस्वगृहगम
ने तु चाण्डालश्चाण्डाल एव स्वी
क्रियते शूद्रस्तु शूद्र एव ब्राह्मण
श्च ब्राह्मण एवेति पृथक् पृथगेव
स्वीक्रियन्ते तत्र तु न भेदः स्वीक्रि
यते मद्यं पीत्वा ब्राह्मणश्चाण्डाली
मुपगच्छति चाण्डालश्च ब्राह्म
णीं समुपगच्छति सर्वे चक्रमध्ये

गताः पुरुषाः शिवरूपिणः स्त्री
क्रियन्ते स्त्रियश्च पार्वतीरूपिण्यः
सर्वाः स्त्रीक्रियन्ते एवं मद्यमद्या
धिक्याच्चाराडाल्यावमनं भवेत्तदा
तं वमितमद्यं पात्रे रौव गृह्याच्च भ
क्षन्ते नैवाचरन्ति वेश्यायोनौ मु
खं धृत्वा मन्त्रजपमनुतिष्ठन्ति ते
नैव तस्य मन्त्रस्य सिद्धिं ब्रुवन्ति
तत्र चमत्कारपञ्चकसेवने नैव मुक्ति
र्भवतीत्युक्तम् मकारपञ्चकं च म
द्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च
एते पञ्चमकाराश्च मोक्षदा हि यु
गे युगे १ अहो मुक्तिकारणमन्वे
षयन्ते षाम् पीत्वा पीत्वा पुनः
पीत्वा यावत्पतति भूतले उत्थाय
पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते वं
न्धन समाज्ञा तस्य मद्यपानस्य

मनुष्यजन्मग्रहणाभावे हेतुत्वं यो
त्यते न पुनर्नारकीयजन्मग्रहणा
भावे हेतुत्वमितिभावः अतस्ते
षु बहूनृतभाषणेषु यदि किंचि
त्सत्यमप्यग्राह्यम्भवितुमर्हति
विषयुक्तान्नवत् इत्याद्यनेक
विधमल्पबुद्ध्या धर्म्मश्रेयस्कर्म्मा
नार्य्याभिहितं युक्तिप्रमाणरहितं
वेदादिभ्योऽत्यन्तविरुद्धमनार्ष
मश्लीलमुक्तम्निकृष्टैर्न कदा
पि ग्राह्यमिति मद्यादिपानेनवु
द्धिभ्रंशो नरकपातश्च मुक्तिस्तु
दूरापेत इति मद्यपानस्यवन्ध
नसमाज्ञानात् मेरुतन्त्रे वामि
नां मतं तत्र हि जलन्धर निर्जित
देवानां शिवं प्रतिगमनं तेनच
शिवेन गौरीं तं सम्जार मुक्ता तत्र

मद्योत्पत्ति देवदानवैर्मथ्यमाना
त्समुद्रादुत्थिता ताञ्चासुराजगृहुः
तदुक्तम् दृष्ट्वा तां दानवाः सर्वे शु
क्राचार्यवरात्सुरान् जित्वाता
ञ्जगृहुस्तस्याः कलशाच्चपपुः सु
राम् ४१ पुनस्तां मातृका पपुरित्यु
क्तम् पीत्वाचतांतयामत्तास्ताः
सुरांवरान्ददुः अनयास्मान्त
र्पयन्ति प्रेष्यं मृत्तान्ति येनराः ते
ऽस्मद्रूपा नसन्देहो भुक्तिमुक्त्यैक
भाजनम् ४२ सुरागङ्गा सुरासि
न्धुः सुरादेवीसरस्वती सुरागोदा
वरीरेवा सुरैव परमंपदम् ४४ अत्र
मद्यपीत्वैव मातृकाभिर्वरोदत्तः
किं किंनवदतिमदोन्मत्तः मद्यम
त्तानांवरशापौनग्राह्यौ किञ्च
सासुरापि दानवैरेव पीतानदेवै

रतस्तत्राप्यप्राशस्त्यमेवेति पुनर्म
मन्थुजलधिंवलहीनैः सुरैसह ध
न्वन्तरिः समायातः सुधाकलश
हस्तवान् ४६ सुराभक्तास्तुतेप्रोचुः
किमिदंपुरुषाहृतम् उवाचमधुरं
विष्णुस्सान्त्वयन्प्रतारयन् ४७
पूर्वं देवास्सन्तु यूयमद्यस्यास्यच्चपान
तः अग्रेयदिसमुत्पन्नंपीयूषंतत्
प्रकीर्त्तितम् अग्रेप्येतत्तुदेवार्थं
निस्सारंपुरुषाहृतम् ४८ अत्र
स्पष्टंप्रतीयते विष्णुकृत वञ्चनम
ग्रेयदिदंपीयूषकथनंसुरायाः त
तोप्यग्रेभवायास्सुधाया निस्सा
रत्व कथनंञ्च किंचास्यमद्यपान
तः पूर्वं देवासन्त्विति सम्प्रातिम
तदेवत्वमितिस्फुटंप्रतीयते अग्रे
ऽपिमोहिनीरूपेणसुधापानं देवा

नामुक्तं ततश्शुक्राचार्यो ऽसुरान्
मद्यमत्तान् दृष्ट्वासुरांशप्तवान् धि
ग्धिगज्ञानं सुराणामनयासुर
याहृतम् तस्मादिमां येपिबन्ति स
र्वे पातकिनस्तु ते प्रयान्तु निरयं
घोरं तिष्ठन्त्विह पिशाचवत् ५२
किञ्चयच्च युष्मन्यायेन तन्मतापक
र्षपूर्वकं स्वमतोत्कर्षं दर्शयाम:
मेरुतन्त्रे ऽप्रामाणिकेप्युक्तम् त्रि
वर्षितमेस्मिंल्लोके कर्तव्या दैदिकी श्रे
ष्ठा स्मार्तीस्यान्मध्यमोत्तमा पौ
राणी मध्यमाख्याता तान्त्रिकी
त्ववरा स्मृता ६२ अत्र भवदीयग्र
न्थे वाममार्गीयवामतन्त्रप्रतिपा
द्यायाउपासनाया अधमत्वं वेद
स्मृतिपुराणेभ्यो भिन्नत्वंच प्रतिपा
दितम् कुतो ऽत्र स्मृतित्वं नावस्था

प्यते मे रतन्त्रे वामिनां शिरोधार्य्यौ
उपासना चतुर्धा विभक्ता उत्तमा तु
वैदिकी मध्यमोत्तमा स्मार्त्ती पौ
राणिकी मध्यमा अधमा तान्त्रि
की देवीरहस्ये सुरथं प्रति वाक्य
म् बलिमांसादि पूजेयं विप्रवर्जि
मये रिता तेषां कि कुरुमांसै र्नो
क्ता पूजा न्नृपक्कचित् किन्नृत
नैव वामग्रन्थे उक्तं ऋधिकमाते
श्लोके द्विजैरिमा देवता नोपा
स्याः छिन्नमस्ता च मातङ्गी ब
गला चोग्रतारिका योगिनी यक्ष
पत्नीनां त्रैपुरा वटुकादयः १०२
शावरास्त्र पुलस्थानि न जप्या
द्विजजन्मनि उपासना त्रिविधा
प्रोक्ता श्रेष्ठा तत्र तु सात्विकी १०४ त
स्यां तु मानसी पूजा पौजे मुख्यतमा

स्मृता तन्त्रसो दक्षिणो मार्गः प्रति
मायाश्च पूजनम् ।१०५। वामोप
चारैस्तदाद्यन्त हि शिष्यते ताम
सोपासनश्चोक्तं पीठादौ बलिद
नतः ।१०६। वाममार्गस्ततश्चाद्यं
वर्णं हित्वा प्रशस्यते एवापद्या
तु सम्प्रोक्ता वामदक्षिणयोः प
रा ।१०७। सम्प्रति कथयतस्तौ ये
पि तन्त्रग्रन्थे वामोपासनस्य
तामसत्वेनाधमत्वम् (तत्) त
स्मादाद्यम्, सात्विकम् (विशि
ष्यते, श्रेष्ठतरमित्यर्थः।) अत्रै
व ब्राह्मणस्य वामें मार्गे नाधि
कार इत्युक्तम्. कुतो नेति चेत्
वाममार्गस्ततश्चाद्यं वर्णं हित्वा
प्रशस्यत इति वचनात्. किंचै
कलक्षणायुक्तस्य ब्राह्मणब्रु

य्यतेमेसतन्त्रेवामिनांशिरेधार्य्यौ
उपासनाचतुर्धाविभक्ताउत्तमातु
वैदिकी मध्यमोत्तमास्मार्ता पौ
राणिकीमध्यमा अधमातान्त्रि
की देवीरहस्येसुरथंप्रतिवाक्य
म् बलिमांसादिपूजेयं विप्रवर्ज्या
मयेरितातेषांकिलकुरामांसेनों
क्तापूजानृपक्वचित् किन्वत
त्रैववामग्रन्थेउक्तं अधिकमते
श्लोके द्विजैरिमादेवतानोपा
स्याः छिन्नमस्ताचमातङ्गी ब
गलाचोग्रतारिकायोगिनीयक्ष
पत्नीनां त्रैपुराचटुकादयः १०२
शावराश्च पुलस्त्यानि न जप्या
द्विजजन्मनि उपासनात्रिविधा
प्रोक्ताश्रेष्ठात्रतुसात्विकी १०४ त
स्यांतुमानसीपूजा पौजेमुख्यतमा

स्मृता तन्त्रसोदक्षिणो मार्गः प्रति
मासाञ्च पूजनम्।१०५ वामकोप
चारैस्तदाद्यन्तं हि शिष्यते ताम
सोपासनं प्रोक्तं पीठादौ बलिद
नतः।१०६। वाममार्गस्ततस्त्वाद्यं
वर्णिहित्वा प्रशस्यते एवापद्या
तु सम्प्रोक्ता वामदक्षिणयोः प
रा।१०७। सम्प्रति कथयन्तीये
पितन्त्र ग्रन्थे वामोपासनस्य
तामसत्वेनाधमत्वम्(तत्) त
स्मादाद्यम्, सात्विकम्(विशि
ष्यते) श्रेष्ठतरमित्यर्थः। अत्रै
व ब्राह्मणस्य वाममार्गे नाधि
कार इत्युक्तम्, कुतो नेति चेत्,
वाममार्गस्ततस्त्वाद्यं वर्णिहित्वा
प्रशस्यत इति वचनात्, किंवै
कलक्षणयुक्तस्य ब्राह्मणस्तु

वस्याधिकारो यन्त्रे वोक्तः। ए-
कादश प्रकाशे त्रिपञ्चाशत्तमे
एकलक्षणसंयुक्तो वामस्तस्य
फलप्रदः शूद्रादियवनान्ता-
नां सिद्धि वामपथे स्थिता॥५३॥
वाममार्गस्थितो विप्रस्तुलसीं
न स्पृशेत्क्वचित्। न स्पृशेद्वैष्ण
वं विप्रं प्रणमेन्नच वैदिकम्॥
५४ हीनो विप्रः स्त्रियाद्या वा
ममार्गरता अमी- इत्यनेन स्फु
टतया प्रतीयते ये ब्राह्मणब्रु
वाः सुरापानादिभिर्ब्राह्मण्या
देव च्युतास्तेषामधिकारः। तत
श्शूद्रादियवनामधिकार इति
सिद्धम्। एतच्च वामिनस्तुल
सीस्पर्शनिषेधाद्भागवतब्रा
ह्मणस्पर्शनिषेधाच्च प्रतीतम्

यस्य हि शूद्रस्य विप्रस्य स्पर्शे
सिद्धिर्वामिनो नास्ति स किम्पुनः
स्वयमेवाधिकुर्य्यात्। अतएव
वाममार्गीय ग्रन्थेष्वोनिश्चितं
ये पूर्वं तएव मद्यपानादिना जाति
भ्रष्टास्तेषामेवाधिकारः। कालि
कापुराणेप्युक्तम्। ब्राह्मणश्च
सुरांदत्वा ब्राह्मण्यादेव हीयते।
मेरुतन्त्रे एकादशप्रकाशेप्युक्तम्
सर्वधर्मविहीनायेवर्णाश्रमविव
र्जिताः कौले वा वाममार्गे वा मुक्ति
मुक्त्योश्च भाजनम्। ६४ अत्र सर्व
धर्मविहीनानां वर्णाश्रमरहितानां
पुंसां कौले वामे चाधिकारस्स्फुट
तया प्रतीयते। निन्दन्तु बान्धवाः
सर्वे त्यजन्तु सुहृदयः जनाह
सन्तु मां हठाद्राजनो दण्डयन्तु

वा॥६५॥ लक्ष्मीस्तिष्ठतु वा यातु न
मुञ्चामि यथास्थितम्॥६६॥ अन्न
स्याग्रतयेदम्नीयते पूर्वं कामिनं
राजनो दण्डयन्ति स्म बान्धवाश्च
जन्ति स्म, अतएवाद्यावधि प्रच्छ
न्नत्वेनैवानुतिष्ठन्ति कामिनो राजद
ण्डाभावेपीदानीं पूर्वाभ्यास एव
प्रच्छन्नत्वे हेतुरिति. किञ्चास्म-
दाचारस्य निन्दापि श्रूयते,
पेयं मद्यं पलं खाद्यं समालोक्य
प्रियामुखम्. इत्येवाचरणं मो
क्षमार्गं वदन्ति च॥७२॥ म
द्यपाने न भुञ्जन्यो यदि सिद्धिं ल
भन्ति चेत् मद्यपानरताः सर्वे
सिद्धिं सिद्धा न भवन्त्विमे॥७३॥ मांस
भक्षणमात्रेण यदि पुण्या गति
र्भवेत् क्रव्यादानां तदा मोक्षो मां

स्वादन्यन्नमुच्यते ॥७४॥ स्त्रीणां मो
गेन ये देवा यदि मुक्तिं प्रजायते ह स
र्वे पि मुक्ताः स्युः कस्य जन्म न वि
द्यते ॥७५॥ सुरादर्शनमात्रेण कु
र्यात्सूर्यावलोकनम् तस्माद्वि
प्रो हि राजन्यो वैश्यश्च न सुरां पि
वेत् ॥७६॥ तस्याः संसर्गमात्रेण प्रा
णायामत्रयञ्चरेत् आजानुभ्यां
भवेत्स्नानं नाभ्यामुपवसेदहः ।
७७॥ ऊर्ध्वं नाभेस्त्रिरात्रं तु मद्यस्य
स्पर्शने विधिः सुरापाने कृते व
ह्नि ज्वलितां तां मुखे क्षिपेत् ॥७८॥
मुखे तया विनिर्दग्धे ततः शुद्धि
मवाप्नुयात् ॥७९॥ अत्र सिद्धि मुक्ति
पुण्यगति हेतुत्वेनाभिमतानां वा
मप्रतिपाद्यानां निष्फलत्वेन सु
रा मांस स्त्री संभोगानां निषेधः

नतु सामान्यतो रागप्राप्तानां विशे
षतो निषेधाभिधानात् अतएवा
ग्निमध्व रागप्राप्त निषेधो वञ्चना
र्थः स्वीकार्यः। अतः किं ज्ञायतेशू
द्रस्य ब्राह्मणस्य वामे नाधिकारः
एवं क्षत्रियवैश्ययोरपि शुद्धौ चे
त्तदा तयो र्नाधिकारः। पतितौ चे
त्तदा तौ वामाद्यनुष्ठातुमधिक्रिये
ते पतितद्विजानां शूद्रादियवना
न्तानान्तु तत्रास्त्येवाधिकारः।
अतो वामकौलादि दीक्षातः पूर्व
मेव मद्यपानादि जातिभ्रंशी
करण कर्म कर्तृणामधिका
रः चाण्डालातिशूद्रयवनाना
न्तु सर्ववेदे नाधिकार इति येतु
जातिशुद्धा अपि द्विजाः प्रवृ
त्तास्तेषां कस्यचिद्रतिरस्ति

ज्ञा द्धिनाश एवोपस्थितस्तेस
न्यानप्युपदिशन्ति स्वयंनष्टः
परान्नाशयतीत्याभाणकमनु
सरन्तः अतोमेरुतन्त्रानुरोधे
नैवतन्त्रस्यस्मृतिभिन्नत्वमा
यातमिति व्यर्थः परिश्रमस्तस्य
पृथक्स्मृतित्वसाधनायेति
यदाहि तत्र चतुर्थीपासनोक्ता वै
दिकी १ स्मार्त्ती २ पौराणिकी ३ ता
न्त्रिकी ४ इत्यत्र द्वितीया चतुर्थी
तोभिन्नेति सिद्धम् वामतन्त्र
कौलतन्त्र बुद्धतन्त्र यवनतन्त्रा
द्यस्सर्वैर्ब्राह्मणादिनानानुष्ठे
यधर्मा इत्यपि च सिद्धम् स
न्ति च नारदपञ्चरात्रादयोऽनु
ष्ठेयधर्मा इति च सिद्धम् नतै
शुपतितानामधिकारः क्वच

यमोः वाममार्गस्थितो विप्रस्तु
तसैं न स्पृशेत् क्वचित् नस्पृ
शेद् द्वाक्षं विप्रं प्रणमेन्न च वैदि
कम् । इतो विप्रः स्त्रियाश्च वा
ममार्गरता अपि अत्रतु तसै
स्पर्शे भागवत विप्रस्पर्शे वैदि
क ब्राह्मण प्रणामानां निषेधे
वामतन्त्रस्य कोऽभिप्रायः। चा
ण्डालो चर्मकारी च मातङ्गी पुल्क
सी तथा श्वपची खनकी चैव
कैवर्ती विश्वयोनिका अत्रासां
स्पर्शे वमितमद्यपाने च कोऽ
भिप्राय इत्यपि वद। यदि तु
तस्यादि शुद्धस्पर्शे सिद्धभा
वः। चाण्डालादयशुद्धस्पर्शे
च श्रीशुंभमन्त्रसिद्धिरित्यभि
प्रायश्चेत्तर्हि कथं न म्लेच्छध

र्मीकत्वं वामे स्वीकरोषि कथंच
न तस्या शुद्धाचारत्वमिति· प्र
सिद्धमेव हि म्लेच्छमन्त्रोपास्या
म्लेच्छदेवता पृष्ठौ सत्यां न प्र
सीदन्ति प्रत्युत ज्वरायुपद्र
वैः साधकम्पीडयन्ति स्वप्नादि
षु च स्वसाधकमुपदिशन्ति,
त्यज वैदिकधर्म्मं त्यज सन्ध्या
वन्दनम्· त्यज भगवन्मन्दिर
गमनम्, त्यज विप्रसंन्यासि
प्रणामम्, स्नानादिनियमन्त्य
जेति अपच्चले भूतप्रेतपिशा
च ब्रह्मवेतालडाकिनीभैर
वादयोऽप्युग्रक्रूरा भयङ्कराका
रास्तमुपेत्यवदन्ति, चरचाण्ड
लीगमनम्, पिब मद्यम्, भक्ष
य मांसम्, कुरु मलमूत्रस्प

शेमु, कुवेरस्थिरस्यशेमु, कोनो नास्ति कांस्याप्यजपन्द्वर भगं पूजयभगिनीं भज श्मशान भस्मधारणं कुर्वित्यादि यदि कश्चियत्किंचिदधीतेन कुर्यात्तं क्लेशयन्ति न च तमजं निंसकदाराधिता अप्याकुम्भीपाकादि निरयपातनमित्यलमतिपल्लवितेन, समस्यस्यानुमानावैफल्यन्दर्शयामः। पृ०१० पं०१४ तत्रानुमानं प्रमाणं बौद्धादिभिरनुष्ठेयत्वादित्याद्यनुमानान्यस्यैवमुखविवरस्यानि ननु कस्यचिद् विद्वय आचार्यस्यवा मुखारविन्दस्थानि प्रतिज्ञैवेयं नकेनचित्कृता प्रतिज्ञा च कामतन्त्रं धर्मे

न प्रमाणं बुद्धतन्त्रं धर्म्मे न प्रमाणमित्याकारैव, अत्र हेतवोऽपि भवन्तु रवस्था एव बौद्धादिभिरनुष्ठेयत्वमपि तन्त्रप्रतिपाद्य कर्म्मणि भवतु न तु तन्त्रमेवानुष्ठेयमभवितुमर्हति किंच वामतन्त्रप्रतिपाद्यं मांसादिकन्तत्कथमनुतिष्ठन्ति बौद्धाः प्रसिद्धमेवाहिंसा परमो धर्म्म इति तेषां कथनम् अतस्तन्त्रमात्रं पक्षीकुर्वतोऽपार्थिकन्ते वचः। वाममार्गीयत्व हेतुरप्यसकृतो नारदपञ्चरात्रादितन्त्रे तदभावात्, वेदाननुलत्वमपि तत्राक्षेत्रे तन्त्रे भागासिद्ध एव, किंच वेदविरुद्धहिंसादिघटितत्वमेव वेदान

नुकूलत्वमतो हेतुद्वयकथन
मप्यसङ्गतमेव तयोरेकार्थ
त्वात्, तन्त्रमात्रेतु बेदविरुद्ध
हिंसादिघटितत्वमपिनास्त्ये
वेत्यपार्थकंकथनम्, भैरव
देव्यादिमतमनुष्यदेवतोद्दे
श्यकेति, अयमपिहेतुर्ने
तन्त्रमात्रेऽतोभागासिद्ध एव.
सर्बजातिशुद्धकरत्वादिति.
सर्वजातिशुद्धिकरत्वादिति;
वक्तव्येसर्वजातिशुद्धकरत्वा
भिधानंव्याकरणस्यापव्यनभ्या
समस्यव्यनक्ति, सर्वजाति
शुद्धिकरत्वमपि वामकौला
दिष्वेव, तदुक्तंमेरुतन्त्रे दीक्षा
प्रकरणे, शैवोवाबैष्णवो
वापिस्त्री शूद्राणांनमोऽन्त

कः नाममन्त्र इति ज्ञात्वा चाण्डा
लान्नपि दीक्षयेत् । ८४ । नत्वस्मद
भिमतनारदपञ्चरात्रा द्यार्ष
तन्त्रेषु सर्वमशुद्धिकरत्वमिति,
वेदविरुद्धहिंसादिचरितत्व
हेतुस्तु वेदाननुकूलत्वहेतुदू
षणावसरे दूषितः । शिष्टाप
रिग्रहत्वादिति सप्तमो हेतुः शि
ष्टपरिगृहीतुमयोग्यत्वादि
त्यर्थमस्य, अत्र तन्त्रमात्रे प
क्षे नारदपञ्चरात्राद्यार्षतन्त्रा
न्तर्भावेण हेतुद्वयाभावात् भा
गासिद्धिस्तु स्फुटैव, शिष्टापरि
गृहीतत्वादिति वक्तव्ये शिष्टा
परिग्रहत्वाभिधानं शब्दशास्त्रा
नवबोधत्वद्योतकम्, किञ्चो
भयोर्हेत्वोः को विशेषः । अपि

तत्त्वात्, एवं महापातकसंसर्गपरिग्रहयोग्यत्वस्यापिमाऽसिद्धत्वम्, एवं तन्त्रमात्रेपर्शीकुर्वतस्तैस्त्यपुगादावस्वीकृतत्वेनासदातनत्वमपि नास्य प्रामाण्यसाधकं केनाप्यनभ्युपगमात् आप्तोक्तस्यैववाक्यस्यप्रामाण्यं तच्च सदातनमसदातनंवा अन्यथा लौकिकवाक्यानां सदातनत्वाभावात् प्रमाणत्वं न स्यादिति, महर्षितिरिक्त कल्पितत्वं निर्थकाक्षरघटितत्वमपि तन्त्रमात्रे नास्ति, तयोराद्ये अभावात्, अहं भैरव इति भावनोपदेशत्वेनस्यातिरिक्तदेवता निषेधकत्वादिति ताद्दशाभाव

नाविशिष्टपुरुषप्रणीतत्वेन
ज्ञायमानत्वादिति चोभयस्य
तन्त्रमात्रेस्वीकृतत्वान्नाप्रा
माण्यसाधकत्वम्; अभेद
भावनयैवयतितव्यमितिश्रु
तेः देवोभूत्वादेवानप्येति
श्रुतिर्दिवोभूत्वा देवान्यज
जेतेतिश्रुतेश्च, सुरामांसरे
तोभक्षणादेर्विधायकत्वा
दित्यपि नतन्त्रमात्र इति भागा
सिद्धेस्तत्र वाशुचिसम्यक्
क्रिया विधिरूपत्वमपि न
सम्भवति॰ पृ॰११ पं॰७ इति
तेषामाप्रद्धमानहेतवः।
एभिर्हेतुभिरहेतुभिरेतै
तन्त्राणां धर्मेऽप्रामाण्यमा
हुस्तेषामेषांकुसृष्टिक

ल्पनाक्रमसूत्रः खण्ड्यत इत्यु
क्तम्, कथय भोः । केषामे
षा कुत्सितकल्पना, किं न्या
यवैशेषिकग्रन्थेषूपलब्धा
क्वचित् किं वा पूर्वोत्तरमी
मांसायोः नहि न्यायकुश
लो मीमांसानिपुणो वा भवा
दृशानां बुद्धिगम्यां कुत्सितां
कल्पयति किं वा सांख्य
योगयोर्ग्रन्थेष्वियं कुत्स
तिः किं वाऽऽचार्यर्षिनि
बन्धेषु क्वचिद् दृष्टा येन के
षांचिदिति वदसि भाति
चेयं त्वदीयैव नहि त्वं वि
नैतादृशकुत्सितकल्पको
मीमांसादिशास्त्राध्येताऽ
ध्यापयिता वा, तस्मान्नि

धीवकेषु चित्कुस्तु ष्टिकस्य
कत्वदोषमारोपयन्तश्रीदि
तोसि नोचेद्दर्शयकुत्रेयंकु
त्सिरिति नास्याः खण्डनेना
मस्यवैधत्वंवैदिकत्वञ्च
सिध्यति मद्यादीनांब्राह्म
णाकर्तृकन्देयत्वंदेवतायैस्व
यंचतदवशिष्टस्यपेयत्व
मप्यस्याः खण्डनेनसिध्यति
ब्राह्मणकर्तृकन्देवतायैसु
रादानंतन्त्रग्रन्थेष्वपिनि
षिद्धम्, तदुक्तंश्रीक्रमे, न
दद्याद्ब्राह्मणोमद्यंमहादेव्यै
कथंचन वामकामोब्राह्मणो
पि मद्यंमांसंनभक्षयेदिति·
सर्वथैवतन्त्रस्मृतिपुराणेति
हासेषुब्राह्मण कर्तृकंसुरा

दानं निषिद्धमेतच्चाग्रे वक्ष्यमि
बौद्धप्रमाणैः स्फुटीभवि
ष्यतीत्युपरम्यते, अत्र प्रथम
तो वामखण्डने मण्डने वा ना
नुमानापेक्षा शाब्दगम्यवि
षयत्वात् अस्ति चेद्वामत
न्त्रं धर्म्मे न प्रमाणं धर्म्मबु
द्ध्या प्रणीतत्वाभावादित्यनु
मानम् बुद्धतन्त्रं धर्म्मे न प्र
माणं धर्म्मबुद्ध्या प्रणीतत्वा
भावादिति चानुमानम्, अ
त्रापि धर्म्मबुद्ध्या प्रणीत
त्वाभावः पुराणेतिहासेभ्यो
निश्चेतव्य इति, अत्रैवत्व
दुक्तबौद्धादिभिरनुष्ठेय
धर्म्मत्व हेतोः कथंचिदुप
योगः। धर्म्मसाधनक्रिया

यांभाक्तः। अनुष्ठेयधर्मत्व
न्त्वस्मदुक्तमावश्यकम्, अन्यथा त्वदुक्तरीत्या तन्त्रमात्रस्यानुष्ठेयत्वाभावात्त्वरूपासिद्धिस्स्यात् न हि तन्त्रमनुष्ठेयं किन्तु तन्त्रप्रतिपाद्या क्रियैवेति, नापि त्वदुक्ततन्त्रमात्रस्य पक्षत्वं सम्भवतीति, बौद्धैर्बुद्धतन्त्रभिन्नस्यानुष्ठानात् यत्र हि धर्मबुद्ध्याप्रणीतत्वन्तत्रैव प्रमाणत्वमिति हि व्याप्तिः यदि च वामतन्त्रस्य शिवप्रणीतत्वन्तदायं हेतुः केचिन्तु मद्यमांसादिभक्षकैश्चाण्डालीगमनादिभिर्जातिपतितैश्च धूर्तैर्व्यभिचारिभिर्यत्किंचिदधीत्यैव गौरीसंवादव्याजेन प्र

गीतं वामकौलादितन्त्रमित्याहुः
तेषां मते त्वन्ये हेत्त्वो धूर्त्तप्रसिद्ध
त्वमहर्ष्यतिरिक्तकल्पितत्वादयः
अन्ये तु शिवेन बुद्धेन च दैत्यदानवा
न्छलयितुं वेदविरुद्धानि तन्त्रा
णि प्रणीतानि ततः प्रभृत्येव शि
ष्टैः प्रमाणत्वेनागृहीतानीति व
दन्ति ननु किमर्थमीश्वरेण
तेषां छलनमनुष्ठितमिति चे
च्छृणु दैत्यदानवादिभिर्वैदिक
र्मणा स्वस्मिन्नतिशय मुत्पा
द्य देवमनुष्यादि जगत्सकलं पी
डितमासीत्तदवधार्य्य श्री भ
गवता जिनगृहेऽवतीर्य्य वेद
विरुद्धानि तन्त्राणि प्रणीतानि
तेश्च तानीषद्बुद्धीन् सर्ववैदिक ध
र्मच्युतांश्चक्रे तत्कर्म्मजनस्व

स्मिन् तादृग्गतिशयाभावान्नश
क्तादेवादिजगत्पीडयितुमितित
दूरैवनार्थं प्रणीतानितन्त्राणि
नप्रमाणानि नीतिपुराणप्रसिद्धम्
तद्द्वामकौलतन्त्रमपिनधर्म
बुद्ध्याशिवेनप्रणीतम् किन्तु
जलन्धरोदैत्यः कश्चित्कुम्भक
र्मानुष्ठातातेनचपीडितादेवाः
शिवसमीपमुपजग्मुस्तेनचगौ
रीप्रश्नव्याजेनवामतन्त्रं प्रणीतं
तच्चासुराजगृहुः यद्यपितन्त्रमे
तत्तन्त्रे नैवैतत्प्रतिपादितं जल
न्धरः शिवाद्दीक्षांजग्राह नापिदेवा
वञ्चनार्थत्वात्तन्त्रस्य तथापिस
र्वधर्मविहीनायेवर्णाश्रमविव
र्जिताःकौलेवावाममार्गे वाभुक्ति
मुक्त्योश्चभाजनाः इत्युक्तत्वा

दैत्यादिभिरेवगृहीतमितिनिश्ची
यते अतएवतन्त्रसुराग्रहणान्दै
त्येष्वेवोक्तम् सुधाग्रहणाच्चदेवे
ष्विति अतएववाममार्गीयेभै
रवीचक्रे चाण्डालादिसाहचर्य्या
भिधानान्मद्यमांसादिनिषिद्ध
पदार्थभक्षणाच्चनशुद्धवैदिक
धर्म्मानुष्ठातॄणामतिपवित्राणा
न्तेषांदेवादीनांपीडनेविनाशने
वाशक्ता अभूवन्नित्येवहेतोर्वा
मतञ्चप्रणीतम् प्रसिद्धमेवैतद्य
त्स्वसहदेशेषुस्नानसन्ध्यानुष्ठाना
दिशुद्धाचाररहितेषुपतितेषुम
द्यपानाद्यशुद्धाचारवत्स्वेववामभा
र्गानुष्ठायिनांदेवताश्चतेराग
धिताः प्रभवन्तीतिनतुवैदिक
पुण्याचारवत्सु ननुवाममकौला

दिशुनसर्वत्रोच्छिष्टचाण्डाल्याद्या
राधनमेवकेवलमपितुविष्णवाद्या
राधनंसात्विकमप्यस्तीत्यतोग्रा
ह्यमेवतदितिचेन्न विष्णवादीनां
सात्विकोपासनस्यवञ्चनार्थ
मभिहितत्वात् यद्धिखलुस्मदीर्द
कुमार्गविहितन्तेनैवेष्टसिद्धेर्व्यर्थ
न्तत्सात्विकं वाममार्गीयोपास
नम्, अद्दतिस्थंचाण्डालाहृत
गङ्गजलमिवविषसम्पृक्तान्न
मिवचाग्राह्यम् नह्येकदेशेन
चग्रन्थानांप्रामाण्यम् एकदे
शस्यसर्वत्रैववेदानुकूलत्वात्
अहिंसापरमोधर्म्म इत्येकदेशे
वेदानुकूलत्वंशाक्तग्रन्थेष्वपि
ष्टमितिनतेनग्रन्थप्रामाण्यमि
ति तस्माद्वाममार्गीयोऽयंग्रा

यादिषु दक्षिणाम्नायस्यवेदानु
कूलत्वेपि ततोभिन्नाम्नायानां
वेदस्मृतिविरुद्धत्वात्त्याज्यमेव वा
मतन्त्रम् अतोवेदविरुद्धत्वप्रदर्श
नाय पूर्वंप्रदर्शितोपिवामाचारः
सम्प्रतिवाममार्गीयाचारो मेरुत
न्त्रस्थः प्रदर्श्यते तत्रादौबलि
दाने पशूनभितान् निरूपयति
नरश्वमहिषः कालश्छागोऽवि
सारसस्तथा कपोतः कुक्कुटश्चेति
सामान्यं पूर्वपूर्वतः ४०२ अत्रस्प
ष्टं प्रतीयते नरमांसादि निन्द्यम
त्यपवित्रमपि भक्षयन्तिवामिनः
तदपिचाण्डाल्याद्युच्छिष्टम् कु
तएतज्ज्ञातमितिचेत् तत्रैवमे
रुतन्त्रेऽभिहितम् आत्मोच्छिष्टं
नदातव्यं परकीयं न भक्षयेत् ॥

उच्छिष्टंभक्षयेत्स्त्रीणां नान्य उ
च्छिष्टमर्पयेत् ३०७० अत्रस्त्री
योच्छिष्टं स्त्रीभ्योनदद्यात्प्रत्युत
स्त्रीणामुच्छिष्टंभक्षयेदित्युक्तम्
नन्वत्रस्त्रीणामिति सामान्यशब्दा
त्कथंविशेष स्त्रीणां चाण्डाल्यादी
नां ग्रहणेनदोषमारोपयन्ति भ
वन्त इतिचेच्छृणुयानार्य्यस्त्र
क्पूजनेऽभिमताः मेरुतन्त्रे
वामिनांशिरोधार्य्येरामप्रकाशे
चाण्डाली चर्मकारीच मातङ्गी
पुल्कसीतथा श्वपचीरजकी
चैवकैवर्त्तीविश्वयोनिका ३२४
कुलाष्टकमिदंप्रोक्तमकुलाष्टक
मुच्यते कडकीसौचिकीचापि
शस्त्रजीवातुरञ्जकी ३२५ गा
यकीरजकीशिल्पीकौशिकीच

तथाष्टमी स्त्रियोमन्त्रसमायु
क्ताः समयाचारपालिकाः ३११
आसांस्त्रीणांमयोत्कृष्टंमुक्ता
नाः कथंनजातिपतिताभवेयुरि
ति अन्यदपिबहुतरमयोग्यं
कर्म्मनिरूपितंपश्चात्कथ्यते
अतएवप्रच्छन्नतयावामिनस्ता
स्तुतिश्चन्ति तदुक्तंच एतद्
गतांवार्तांबहिर्नैवप्रकाशयेत
तेभ्योद्रोहंनकुर्वीतनाहितंचस
माचरेत ४८६ नानिन्देन्नहसे
द्भक्त्यासमन्द्वेयोगिनीपरम् ॥
प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वेवर्णाद्वि
जातयः [निवृत्ते भैरवीचक्रे स
र्वेवर्णाद्विजातयः] निवृत्ते भैरवी
चक्रे सर्ववर्णाः पृथक पृथक ॥
एवंचक्रस्य महात्म्यं देवीपूजो

प्रयोगतः ४८९ स्त्रियोऽथपुरु
षः षण्ढश्चाण्डालोवाद्विजोत्तमः
चक्रमध्ये नभेदोस्ति सर्वे देवस
मास्मृताः ४९० चक्रमध्यगताः
सर्वेपुरुषाः शिवरूपिणः स्त्रि
यः सर्वाश्चपार्वत्यस्तस्माद्भेदं न
कारयेत् ४९१ मद्यकुम्भसहस्रै
स्तुमांसभारशतैरपि नतुष्यति
महामायाभगलिङ्गामृतंबिना ४९२
भगिनीं वासुतांभार्यां योदद्या
त्कुलयोगिने मधुमत्तायचक्रे
वाचक्रे वापुरायंमाकसतु ४९३
अहोवामिनांमुक्तिलज्जानामाचा
रः अत्रचकौलिकायमद्यमत्ताय
स्वभगिनीपुत्रिकाभार्यादानमर्प
णं विहितम् किमतः परं निर्लज्ज
त्वकारणम् यत्रहि चाण्डाल्या

दिष्वपत्याचारः किमतःप
रं पातत्यकारणम्, अत्राशि
ष्यायस्वभगिन्या चर्पणे प्रयो
जनमाह कौलिकाचार्यैः भ
गलिङ्गामृतं विना महामाया
मयघटसहस्रैरपि न तु ष्यत्य
तो युवतिं कामगर्विता मित्या
दि पूर्वोक्तलक्षणवतीं स्वभ
गिनीं मातरं वा ऽवश्यमर्पये
ति तस्याभिप्रायः। सम्प्रत्य
नुमानानि निरूपयामः। बौ
द्धतन्त्रं धर्म्मे न प्रमाणं अध
र्म्मबुद्ध्या प्रणीतत्वात्, बौद्धा
दिभिरनुष्ठेयधर्मत्वात् चा
र्वाकादितन्त्रवत्, व्यतिरेके
पञ्चरात्रवत्, वामतन्त्रं धर्मे
न प्रमाणं धर्म्मबुद्ध्या प्रणीत

त्वाभावाद्बुद्धतन्त्रवत्, अत्रत्व
दुक्तहेतवोप्यनतिप्रयोजनकाः
प्रयोज्याः। वेदाननुकूलत्वात्
सर्वजातिशुद्धिकरत्वात्, शि
ष्टापरिगृहीतत्वात्, प्राय
श्चित्तैर्भिन्नमहापातकिपरि
ग्रहयोग्यत्वात्, धूर्त्तप्रक्षिप्त
घटितत्वात्, महर्ष्यतिरिक्त
कल्पितत्वात्, सुरामांसरेतो
भक्षणादेर्विधायकत्वात्,
वेश्यायोनिक्षालिततोयत
र्पणविधायकत्वात्, असदा
तनत्वादयो नाप्रामाण्यसाध
का आप्तोक्तं वाक्यं प्रमाणं स
दातनमसदातनं वेति न निय
मः सदातनमेवप्रमाणम्,

अत्र केचित्कौलतन्त्रं वामत
न्त्रं चशिव प्रणीतं मन्यन्ते ये
हि तन्त्रात्याचारस्य मिर्म
द्यमांसादिभक्षकै र्धूर्तैः प्र
सिद्धं स्वविषयसुखसिद्धे
केवलमिति वदन्ति, अपरे तु
सर्वमेव धूर्तजनै स्स्वयं शि
वगौरीसम्वादेनास काममि
दं सौन्दर्य्य लावण्यवतीं युवतिं
शिष्यभार्य्यां भगिनीं वा निरी
क्ष्य तां जिघृक्षुणा केनचित्स्व
शिष्य बुद्धि व्यामोहार्थं प्रणी
तमिति वदन्ति, अन्ये तु
धिकारिभेदं कल्पयन्ति ?
ये हिरण्यकश्यप हिताः सर्वे
धर्म्मबहिष्कृता मद्यादिपा
नाच्युतब्राह्मण्या ब्राह्मणु

वाश्च ते सर्वे धूर्त्ताश्चाण्डाली गमनाद्यसत्कर्मकारिणो वामेवा कौलमार्गेवाधिकारिणः। अत एव मेरुतन्त्रेचोक्तं सर्वधर्मविहीनाये वर्णाश्रम विवर्जिताः कौले वा वाममार्गे वा भुक्तिमुक्त्योश्च भाजनाः। इत्यादि तथा च मेरुक्त प्रमाणे ये श्चुद्रन्या याद्युक्तमेवाधिकारिविशेषपरत्वमिति; अतस्सूक्तं वामतन्त्रे धर्मेन प्रमाणं धर्मविद्धा प्रणीतत्वाभावादिति, दुष्टजनबुद्धिव्यामोहार्थे पक्षाश्रयणात्, यत्तु शिष्टापरिगृहीतत्वादिति, तत्त्वधिकारिभेदपक्षाश्रयणादुक्तम्, यदुक्तं

सुरामांसरेतोभक्षणादेर्विधायकत्वादिति तच्चमद्यमांसादिभक्षकैर्धूर्तैः प्रक्षिप्तमिति पक्षाश्रयणात्, एवंविषयभेदव्यवस्थया नानाहेतुकथनमतो नाधिकहेतुप्रयोगेऽधिकस्वरूपनिग्रहस्थानम्
अस्तु तत्र शूद्रादीनामधिकारः शूद्रादियवनान्तानां सिद्धिर्वामपथेऽस्थितेतिवचनात् वैदिकस्यब्राह्मणस्यतु सर्वथैव नाधिकारसिद्धिः। नापिधर्मेप्रामाण्यमस्मामतन्त्रस्य, पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः वेदाःस्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश इतिधर्मेप्रमाणकेष्वनन्तर्भावात्. तस्मा

न्त्वासत्त्वं वेदविरुद्धप्रमाण
त्वं नापि तत्स्मृतिः अनुभवत्व
स्य तत्र स्वीकारात्, पृ० ११ पं०
१३। मा हिंस्यात्सर्वा भूतानीति
वेदवाक्यान्तर्भावेण व्यभिचा
र इति। अत्र यद्यपि वामत
न्त्रत्वावच्छेदेन पक्षत्वाद्व्यभि
चारस्यैवाभावः बौद्धादिभि
रनुष्ठेयधर्मत्वहेतोरवृत्तित्वा
त् साध्यतावच्छेदकसम्बन्धा
वच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकाव
च्छिन्नप्रतियोगिताकाभावव
न्निरूपितहेतुतावच्छेदकस
म्बन्धावच्छिन्नहेतुतावच्छेद
कावच्छिन्नवृत्तित्वस्यैव व्य
भिचारत्वात्, तथापि बौद्ध
तन्त्रपक्षस्योत्थापनाद्वेदबा

ष्यान्तर्भावेण न तत्र व्यभि
चारः। बौद्धैरहिंसा परमो
धर्म इति बुद्ध वाक्यादेवानु
मीयमानत्वात्, तस्य च न ध
र्मत्वम्, (चोदना लक्षणोऽ
र्थो धर्मः) अ० १ पा० १ सू० २ इति
जैमिनिना वेदप्रतिपाद्यस्यैव
धर्मत्वाभिधानात्, तत्र हेतुप
क्षयोरपि भिन्नत्वादेतिनकु
त्रापि दोषः पदमादध्याति, पृ०
११ पं० १३। सोऽयमिति प्रत्यभि
ज्ञेति अत्रास्माभिस्तु पक्षता
वच्छेदकावच्छेदेनानुमितिर
भिमता तस्तु नः पक्षतावच्छे
दक सामानाधिकरण्येना
नुमितिघटकहेत्वनुपाधि
सुद्ध वयपी ल्तते तद्भाव

कारः। अग्निमव्यासोक्तवेद
वादे शुद्धमतसाङ्कर्य्ये पूर्व
कोपाधिदोषोद्भवं नयचयु
क्तिनिर्मूलमेव, तथाप्यधि
कतरशास्त्रीयसंस्काररहि
त्यप्रकाशनाय बहुतरयु
क्तिकलापेन प्रमाणेनोपाधि
दोषमुद्धरामः। यदुक्तमनेन
न्यायकुशलेन नित्यविज्ञानं
कारणं स्वन्दात्मकं कार्यं सो
हमिति प्रत्यभिज्ञाभोगमोक्ष
हेतुः शिवशक्त्यात्मकनित्य
विज्ञानस्य जगद्धेतुत्वेन शा
क्तिचक्रसन्धाने परमैश्वर्य्य
लाभादिबोधकशिवसूत्रप्र
त्यभिज्ञाकारिकानुसारिवे
दान्तिभिः संमतेव्यासोक्तवे

दवादेपक्षेसाधनाव्यापक
त्वाच्चेति, तदत्यन्तंस्यवीय:
बौद्धादिभिरनुक्तेयधर्मित्व
हेतोः शिवसूत्रप्रत्यभिज्ञासूत्रादि
ग्रन्थेष्वभावात्प्रामाणिकबाधप्र
मितत्वरूपोपाधेः साधनाव्याप
कत्वम् साधनवन्निष्ठाभाव
प्रतियोगितावच्छेदकधर्मव
त्वस्यैवसाधनाव्यापकत्वात्
नहीमेग्रन्थाबौद्धानांयेनवेद
न्तिसंमते । प्रकृतिश्चप्रतिज्ञा
दृष्टान्तानुपरोधात् । इतित्वं
प्रामाणिकबाधाभाववत्प्रमित
त्वाभावरूपोपाधेः साधना
व्यापकत्वंस्यात तत्रसाध
नस्यैवाभावात्, अन्यच्चान
र्थक्यम्, अप्रामाणिकबाध

प्रमितत्वमित्यस्यकस्यचित्पि
रिडतस्यपार्श्वेस्थकल्पितत्वप्र
कटनार्थेमंश्च सरीवादीत्य
स्यहृशीकवादाभाववदित्य
कल्पयत्, अप्रमितत्वेत्यस्य
प्रमितत्वाभावेत्यकल्पयत्:
ज्ञायतेचानेनव्यत्यसीकरेणो
नकश्चिद्ग्रन्थोऽस्यमार्गस्यो
पलब्धस्तंचप्रच्छन्नंबुध्वाय
त्किंचिच्छब्दव्यत्यासेनस्वना
म्नामुद्रापितः प्रच्छन्नमार्ग
स्यप्रच्छन्नग्रन्थस्यसङ्केतोऽ
स्यव्यत्यासीकरणात्ततोप्यस
ङ्गतम्, अस्तुन्यस्यास्यवा
ऽयंग्रन्थो नात्रविचारः॥
प्रत्यभिज्ञासूत्रकाराबौद्धानै
वासन्, श्रीन्यायाचार्योद

यत्नप्रणीतायाः क्रियावल्या
भूमिकायामुक्तम् येनेश्वर
प्रत्यभिज्ञासूत्रकाराः श्रीसो
मानन्दनाथशिष्याउत्पलदे
वाः तथोक्तम् जनस्यायत्न
सिद्धयर्थमुदयाकरसूनुना ई
श्वरप्रत्यभिज्ञेयमुत्पलेनोपपा
दिता इत्युक्तवन्तः अपिचे
श्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिन्यान्त
ईकायामुत्पलदेवप्रशिष्या
ल्लक्ष्मणगुप्तशिष्याः ४११५
तमेकलिवर्षे वर्तमानाश्श्रीमभिन
वगुप्ताचार्याः । आरम्भश्लोकः
श्रीत्र्यैयम्बकसद्वंशमध्यमुक्ता
मयस्थितेः । श्रीसोमानन्दना
थस्य विज्ञानप्रतिबिम्बकम् ॥१॥
श्रुतुलानन्यसाहिपूमर्या

समन्वयात् ईश्वरप्रत्यभिज्ञा
ख्यायः शास्त्रं यत्सुनिर्मलम् २
तस्य शिष्यः करोम्येतां तत्त्वकृति
हृत्तिलघुम् कुशाभिनवगुप्तो
हं श्रीमल्लक्ष्मणगुप्ततः २ ई
त्युक्तवन्त स्ते परात्रिंशिकातत्त्व
विवरण तन्त्रालोक विवेकादि
ग्रन्थेभ्यः काश्मीरदेशीयाइ
त्यवगम्यन्ते, कथं पुनस्तं सुधै
र्विभ्रान्तो बौद्धादिभिरुच्छेद्यत्व
हेतुतयाभ्यसे, अतः साध
नाव्यापकत्वाभाववत्त्वासागिक
बाह्यप्रमितत्वमुपाधिरितिभावः
अत्र च किंचिदीश्वरप्रत्यभिज्ञो
पदेशतत्त्वं निरूपयामः। प्रत्य
भिज्ञा हृदये सूत्राणि प्रदर्श्य
तेषां शिवसूत्राणि च विवृतिः

स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः॥ अ
स्यार्थः। विश्वस्य सदाशिवादेर्भू
म्यन्तस्य॰ सिद्धौ॰ निष्पत्तौ॰
प्रकाशने स्थित्यात्मनि परप्र
मातृविश्रान्त्यात्मनि च संहा
रे पराशक्तिरूपा चितिः भग
वती स्वतन्त्रा अनुत्तर विमर्श
मयी हेतुः। कारणम्, अस्यां
प्रसरन्त्यां जगदुन्मिषति व्यव
तिष्ठते च, अन्यस्य तु मायाप्र
कृत्यादेः। चित्प्रकाशाभिन्नस्य
अप्रकाशमानत्वेनासत्त्वान्न
क्वचिदपि हेतुत्वम्, प्रकाश
नेतु प्रकाशैक्यात्प्रकाशरूपा
चितिरेव हेतुः। न त्वसौ कश्चि
त्, अत एव देशकालाकारा
एतत्सृष्टा एतदनुप्राणिताश्च

नैतत्स्वरूपं भेत्तुमलमिति व्यापक नित्योदित परिपूर्णरूपेयमित्यर्थलभ्यमेवैतत् ननु जगदपि चितो भिन्नं नैव किंचित्, अभेदेच कथं हेतुहेतुमद्भावः उच्यते चिदेव भगवती स्वच्छ स्वतन्त्र रूपा तत्तदनन्त जगदात्मना स्फुरति इत्येतावत्परमार्थरूपोयं कार्य्यकारणभावः। यत श्चेयमेव प्रमातृ प्रमाण प्रमेयस्य विश्वस्य, सिद्धौ, प्रकाशने हेतुः ततोऽस्याः स्वतन्त्रा परिच्छिन्न प्रकाश रूपायाः। सिद्धौ अभिनवार्थ प्रकाशन रूपं न प्रमाण वराकमुपयुक्तमुपपन्नं वा अथ विश्वस्य स्वरूपं विभागेन दर्शयितुं, तृतीय

सूत्रम् ॥ तन्नानाअनुरूपग्राह्यग्राहकभेदात् ॥ तत् विश्वं नाना अनेकप्रकारम् अनुरूपाणां परस्परौचित्यावस्थितीनां ग्राह्याणां ग्राहकानां च भेदात् वैचित्र्यात्, अथ कोयंसंसारीति इत्याह, चतुर्थसूत्रेण, चितिसंकोचात्मा चेतनोपिसंकुचितविश्वमयः ॥ श्रीपरमशिवः स्वात्मैक्येन स्थितं विश्वं सदाशिवाद्युचितरूपेण अवबिभासयिषुः पूर्वं चिदैक्याख्यातिमयानाश्रितशिवपर्यायशून्यातिशून्यात्मतया प्रकाशाभेदेन प्रकाशमानतया स्फुरति तत श्चिद्रसाश्यानतारूपाशेषतत्त्वभुवनभावतत्तत्प्रमात्रात्मतया

पिप्रथते यथाच्चायंभगवान
विश्वशरीरः तथाचितिसंको
चात्मासंकुचितचिद्रूपः चेत
नोग्राहकोपिवटधानीवत्संकुचि
ताशेषविश्वरूपः ननुग्राहको
ऽयंविकल्पमयः विकल्पनंच
चित्तहेतुकंसच्चित्तचित्ते कथम
स्यशिवात्मकत्वमित्याशङ्क्य
चित्तमेवनिर्णेतुमाहपंञ्चमसू
त्रेण॥ चितिरेवचेतनपदाद
वरूढाचेत्यसंकोचनीचित्तम्॥
५ नचित्तंनामान्यत्किंचिद
पितुसैवभगवतीतत् तथाहि
सास्वंरूपंगोपययित्वायदासं
कोचंगृह्णातितदाद्वयीगतिः
कदाचिदुल्लसितमपिसंकोचंगु
णीकृत्यचित्प्राधान्येनस्फुरति

कदाचित्संकोचप्रधानतया चि
त्प्राधान्ये पक्षेसहजे प्रकाशमात्र
प्रधानत्वे विज्ञाना कलता प्रका
शपरामर्शप्रधानत्वेतु विद्याप्रमा
तृतातत्रापिसंकोचस्य तनुतायां
ईशसदाशिवानाश्रितरूपता
समाधिप्रयत्नोपार्जितेतु चित्प्र
धानत्वे शुद्धाध्वस्त प्रमातृताक्र
मात्क्रमंप्रकर्षवतीसंकोचप्राधा
न्येतु शून्यादिप्रमातृतासवंम
वस्थितेसतिचितिरेव संकुचित
ग्राहकरूपा चेतनपदादव
रूढा अर्थग्रहणोन्मुखीसति
चैतन्येन, नीलसुखादिना, संको
चिनी, उभयसंकोचसंकुचितै
वचितम् स्वातन्त्र्यात्माचिति
शक्तिरेवज्ञानक्रियामायाशक्ति

रूपापमुद्रणयांसंकोचप्रकर्षात्
सत्वरजस्तमः स्वभावचितात्म
तयास्फुरति इत्युक्तं प्रत्यभिज्ञा
याम् ❀ अथप्रत्यभिज्ञाकारिका
यामप्युक्तम् ❀ तदेवंव्यवहारे
पिप्रभुर्देहादिमाविशन् भातमे
वान्तरर्थौघमिच्छयाभासयेद्ब
हिः १ व्युत्थानप्रशान्तभेदा
वभासंभवतीत्याह, शक्तिचक्र
सन्धानेविश्वसंहारः ६ इदंच
शिवसूत्रम्, ईश्वरस्यैवान्तर्ल
स्यबहिर्दृश्यात्मतयानिःशेष
शक्तिचक्रक्रमाक्रमाक्रामि
णीअतिक्रान्तक्रमातिरिक्ता
नतिरिक्ततदुभयात्मतयाप्य
भिधीयमानाप्यनेतद्रूपा अ
नुत्तरापरास्वातन्त्र्यशक्तिःका

प्यास्ति यथास्वमिमौ मस्तुल्ला:
सात्मभरतिपरविमर्शा न्यनंश्री
मत्स्र स्यादिशक्तिचक्रस्फार
णात्माक्रीडेयमादर्शितातस्ये
तदाभासितस्य शक्तिचक्र
स्य रहस्याम्नातरीत्या यत्सन्धा
नं यथोचितक्रमविमर्शनम·
तस्मिन्सति कालाग्न्यादेश्वर
मकलान्तस्य विश्वस्य संहा
रो देहात्मतया बाह्यतया चाव
स्थितस्यापि सतः परसम्विद
ग्निसद्भावो भवत्येव: । शक्ति
चक्रक्रमाक्रमौ किमिति चे
च्छृणु क्रमः सृष्टिस्थितिसंहा
राणामाभासविच्छेदेन स्वभावः
अक्रमो युगपतेवावभासः
तोक्रमाक्रमावाक्रामतीति·

क्रमाक्रमाक्रामिणी, तयाचो
क्तम्, क्रमत्रयसमाश्रयव्य
तिरेकेणानन्तं क्रमनियम
लङ्घनं विदधती विभात्यु
च्चैः क्रमैकवपुरक्रमप्र-
कृतिरेव या शोभते करोमि
हृदि तामहं भगवतीं परांस-
म्विदम्, इति सृष्ट्यादि-क्रम
त्रयरूपतामवभासयन्त्यपि
तदतिवर्तनेन परिस्फुरन्ती
क्रमाक्रमवपुः परैवानाख्य
पारमेश्वरी सम्वित्परामृष्टा
भवतीत्यर्थः, शक्तिचक्रस्य
सृष्ट्यादिक्रमः। तस्य सन्धान
ञ्च पूर्वोक्तप्रकारेण विमर्श
इति भावः। अथ वेदान्तिसं
मतव्यालीकेन बुद्धसमन्त

सृष्टिकारणवादस्यासाङ्
कर्यज्ञापनाय प्रदर्शितसू
त्रस्य भाष्यं प्रदर्शयामः। प्रकृ
तिश्चोपादानकारणं च ब्रह्मा
भ्युपगन्तव्यं निमित्तकारणं
च न केवलं निमित्तकारण
मेव, कस्मात्प्रतिज्ञादृष्टान्ता
नुपरोधात्, एवं हि प्रति
ज्ञादृष्टान्तौ श्रुतौ नोपरुध्ये
ते, प्रतिज्ञा तावत् ,, उत त
मादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रु
तं भवत्यमतं मतमविज्ञातं
विज्ञातम्, छा० ६।१।२
तत्रैकेन विज्ञातेन सर्वम
न्यदविज्ञातमपि विज्ञातं भ
वतीति प्रतीयते, तच्चोपा
दानकारणविज्ञाने सर्ववि

ज्ञानं सम्भवत्युपादान कारणा
व्यतिरेका त्कार्य्यस्य निमित्त
कारणाव्यतिरेकस्तु कार्य्यस्य
नास्ति, लोके तदृष्टा: प्रासाद
व्यतिरेकदर्शनात्, दृष्टान्तो
पि यथासोम्यैकेन मृत्पिण्डे
न सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात्,
वाचारम्भणं विकारो नामधे
यं मृत्तिकेत्येव सत्यम्, इत्यु
पादान कारण गोचर एवाम्ना
यते, इत्यु क्तं शाङ्करे, इत्य
त्र चेतनं नित्य विज्ञानरूपं ज
गत: कारणमिति कार्य्यं ज ग
तोऽभिन्नत्कारणं नित्य वि
ज्ञानरूपम्, नह्यत्र बौद्धादि
भिरनुक्षेपयच्चर्मीत्वहेतो र्हि ति
त्वन्नादभावान्न साधना स्या

पकत्वमक्षणिकत्वाद्यप्रसि
तत्वरूपोपाधेरितिभावः। द्र
ष्टव्यमस्यन्यायतत्वाभिज्ञत्व
म्, यतःपक्षमात्रएवोपा
धेःसाध्यव्यापकत्वंसाधना
व्यापकत्वञ्चब्रूते, तन्नमा
त्रस्यैवानेनपक्षीकरणान्न
भिन्नेचोपाधेःप्रदर्शयितुम
शक्यत्वात्, किंचयत्रबौ
द्धादिभिरनुमेयधर्मित्वंक्ष
णिकात्मवादे तत्रनाक्षणि
कत्वादिभिः शाङ्कराचार्यै
दिभिः प्रमितत्वम्, तस्मा
त्साधनाव्यापकत्वान्नोपा
धिरिति, नापीदंमतंबुद्ध
स्यानित्यविज्ञप्तिमात्रं:
नक्षणिकविज्ञप्तिमात्र

स्य स्वीकृतत्वात्, अतएवा
र्थासंस्पर्शं नित्यविज्ञप्तिमात्रं
साधयद्भिः श्रीगौडपादाचा
र्यैर्माण्डूक्यकारिकायामु
क्तम्, क्रमते न हि बुद्धस्य
ज्ञानं धर्मेषु तायिनः। सर्वे
धर्मास्तथा ज्ञानं नैतद्बुद्धेन
भाषितम्, अतो व्यासोक्ते
र्वेदवादे पक्षे बौद्धादिभिर
नुपेयधर्मित्वहेतोरभावा
त् कासानुपाधिरुद्भावितः।
लक्षणसङ्क्रमनाभावान्नो
पाधिस्सम्भावितीत्यलमस्य
स्य चक्षुर्हीनाम्नोऽस्य जग
द्ध्यमप्यपश्यतः शापकस्य
स्वभावमनुसरतोवंकृतरहै
वोद्भावनेनेति ❀ पृ० १२ पं० १

लेखनशैलीद्रष्टव्या क्वचिद्बुद्ध उवाचेतिशब्दमात्रघटितत्वेनन बुद्धप्रणीतत्वमित्येवमितिपद घटितंवद कथंबुद्धउवाचश ब्दमात्रघटितत्वमितीतिपदर हितंवदसि किञ्चकेनेयंव्या प्तिर्गृहीतायत्रबुद्धउवाचेतिश ब्दघटितत्वन्तत्रबुद्धप्रणीतत्व मिति येनैवंप्रतिषिध्यते स्तु हिश्रुतंगर्त्तसदंयुवानमित्यन्नै स्त्रिभिरथर्ववेगादिमन्त्राणाञ्च तुर्थांशैः किन्तेप्रयोजनंसि द्धम् नाप्येषांभाष्यप्रदर्शनपु रःसरंस्वविषयेसमन्वयःकृतः किंपाठवेलसराय इह्यैवोद्धृताः किंचसर्वेश्वरेणप्रणीतत्वस्य त स्यैवबुद्धेनोपदेशइतिसिद्धान्त

इति अत्र प्रणीत स्यैवंवद
कथंप्रणीतत्वस्येत्युच्यते नाय
मेतद्विजानातीत्वतल् प्रत्यया
न्तस्यप्रयोगेऽर्थेमहदन्तरम्भव
तीति इदमेवन्यायशास्त्राभि
ज्ञत्वंमन्यतेयत्ततःऽन्तपदप्रयो
क्तृत्वम् पृ. १२ पं. १४ अन्यद
प्यस्यासम्बद्धकथनन्द्रष्टव्यम्
अस्यमहतोभूतस्यपरमात्मनो
निःश्वसितावेदाःस्वशिष्येभ्योबु
द्धेनोपदिष्टान्नतुतेनस्वयंप्रणीताः
यथामनूपदिष्टस्यानुगुणोपदे
शोनतुमनुगुणास्वयंप्रणीत इत्य
नेनतुप्रणीतत्वस्यासिद्धिर्योगि
ता अयञ्चबौद्धादिभिरनुष्ठान
स्यसाधयितुमशक्यत्वेनेतिवद
न् बौद्धादिभिरनुष्ठेयत्वहेतोः

स्वरूपासिद्धिमुद्भावयति किंच पूर्वं बौद्धाद्यनुष्ठानस्य साधयितुमशक्यत्वादित्युक्तं पुनरग्रेतद्धेत्वंशप्रतिज्ञातं बौद्धानुष्ठितानि तच्छास्त्राणि बुद्धप्रणीतत्वादिति अन्यच्च बुद्धोपदिष्टं यदि बौद्धैर्नानुष्ठितं तर्हि उपदेशो व्यर्थः स्यात् पृ. १२ पं. १८ बौद्धानुष्ठितानि तच्छास्त्राणि बुद्धप्रणीतत्वादित्यनुमानप्रयोगे हेतोरसिद्धत्वादिति, अहो अस्य गुरवविवरान्च्छौघं किंचिन्निःसरति, अहो न्यायाभिज्ञत्वम् नेदं प्रतिज्ञावाक्यं कश्चिदननुमन्तप्रावसील तन्त्रत्वावच्छेदेन बौद्धानुष्ठितत्वस्य साध्यस्याभावात् किंतु बुद्धतन्त्रत्वावच्छेदेनानसाध्यसिद्धिः तथाच बुद्धप्रणी

तच्चास्य तत्रसत्वान्नस्वरूपासि द्धिः अत्रापि बुद्धतन्त्रं बौद्धानु ष्ठितं बुद्धप्रणीतत्वादितिबुद्धस्य वञ्चकत्वाभिप्रायेणोक्तम् त थाच बौद्धैरल्पबुद्धिभिर्दैत्यादि भिस्तान्छिष्यैरनुष्ठितत्वात् व ञ्चक बुद्धप्रणीतत्वाच्चन प्रमाण मितिभावः किंचतस्मात्तिवाम मार्गवद्बुद्धमार्गमपिहितत मंमन्य सेकिंसर्वैर्निषिद्धमार्गाः शिष्टग र्हितास्तथैवस्वीकृताः किंयवन तन्त्रमपिधर्मे कदाचित्स्वीकरि ष्यसि पृ० १२ पं० ३॥ नास्ति कबौद्धानुष्ठीयमानत्वसाधनहे तोः साध्याभाव व्यापकत्वेन वि रोधश्चेति अन्यच्चस्वनिर्मू लत्वे नगगनकुसुमायमानम

पार्थकमभिधानमस्याज्ञानतिरो
हितचेतनाशक्तिकस्यप्रथमतो
बुद्धानुष्ठितानितन्त्राणिबुद्धप्र
णीतत्वादित्यत्रप्रतिज्ञैवनकेना
पिस्वीकृतानापिसासंभवति त
न्त्रमात्रस्यबौद्धानुष्ठितत्वाभावा
त् किंचतन्त्रेबौद्धानुष्ठितत्व
मपिनास्तिस्याच्चेत्तन्त्रप्रतिपाद्य
क्रियायामेवनतुतन्त्रमेवानुष्ठेयं
भवतीति हन्तभोः अष्टादश
भेदभिन्नाबौद्धाः सर्वेनास्तिका
सर्वेतेनः श्रुतसम्मतिवंनास्ति
कबौद्धानुष्ठीयमानत्वसाधनइति
नास्तिकत्वविशेषणेनविशेष
यन्नास्तिकबौद्धानपिस्वीकरोषी
तिप्रतीयते किंपूर्वानुमानेतन्त्रा
मृतसमाने आस्तिकबौद्धत्वं

त्वास्मिन्नभ्युपगच्छसि अहो
हास्यास्पदमभिधानं विदुषाम्
पृ. १२ पं. ४ क्षणिकात्मसिद्धान्त
कत्वं आस्तिकानभ्युपगतत्वं
वोपाधिरिति ॥ इदंचोपाधिदू
षोद्भावनं तर्कशास्त्रतत्त्वानभि
ज्ञत्वं व्यनक्ति प्रथमतोऽत्रप्रति
ज्ञात्वस्यैवाभावः अभ्युपगम्याप्यु
पाधिस्तु न संभवति साध्यं चैवो
ह्यनुष्ठितत्वं हि क्रियायां न तत्र
क्षणिकात्मसिद्धान्तकत्वम् तच्च
क्षणिकात्मनि स्यात्तस्मिन्नास्ति
के पुरुषे वा न तु क्षणिकक्रियाया
म् तथाच साध्यव्यापकत्वाभा
वात् कथमुपाधिरिति बुद्ध
प्रणीतत्वं वौद्धतन्त्रेषु तत्राप्युभ
योरुपाध्योः सत्वात्साधनव्याप

कत्वमेवद्वयोरितिसाधनाव्याप
कत्वाभावान्नोपाधिद्वयंसंभवति
पूर्वकालिककुसृष्टिकल्पनाया
मप्युपाधिद्वयोनहितोसंभवः य
द्यपियत्रप्रमाणत्वाभावस्तत्रक्ष
णिकात्मसिद्धान्तकत्वं ऽपास्ति
कानभ्युपगतत्वंचेतिसाध्यव्यापक
त्वम् तथापियत्रबौद्धादिभिरनु
ष्ठेयत्वन्तन्मतेनतत्राप्युभयोः
सत्वमितिसाधनस्यापिव्यापक
त्वान्नोपाधिद्वय संभवः नह्य
यमर्द्धजरतीन्यायोऽभ्युपेतव्यो
यद्धिबुद्धकृतंबेदादिसन्धानस्य
खण्डनं नाभ्युपगन्तव्यम् अथ
चतत्प्रणीततन्त्रमभ्युपगन्तव्य
मिति एतादृशाभिप्रायेणोपाधु
द्भावनन्तुपूतिकूष्माण्डायितमभि

दृष्टान्तोऽयं केनोपमेयं इति न विजा
नीमः। श्रीबुद्धस्य भगवद्रूपत्वेपि
तद्वाक्यमग्राह्यमेव धर्मबुद्ध्या
प्रणीतत्वाभावादिति कुमारिल
भट्टपादैः शाबरभाष्ये तन्त्रवार्त्ति
कनभाषमाणैर्बहुभिर्युक्तिकला
पैः साधितत्वात् तस्मान्न बुद्ध
शाक्यादिस्मृतिवाक्यैर्धर्म्मोग्राह्यः
श्रीभगवतो निःश्वासत्वं बुद्धतन्त्र
स्यास्तु श्रीभगवन्निःश्वास एवा
नादिप्रवाहसिद्धो ग्राह्यः। नतूत्तर
स्य निःश्वासस्य ग्राह्यत्वं वञ्चना
र्थं गृहीतरूपेण निःश्वसितत्वात्,
पुराणेतिहासप्रसिद्धमेतत्, यदि
पुण्यां गतिमिच्छसि तर्हि न वा भवु
द्धादिवाक्यं विश्वसिहि तत्र पुराणे
तिहासप्रमाणैः प्रतारकवाक्यत्व

निश्चयादिति भावः। पृ० १३ पं०
१४। वामं शोभनदुष्टयोरिति
कोशेन शोभनमार्गीयत्वादि-
ति,, अत्र दुष्टस्वरूपार्थोऽस्मि
न्मतेन तथा च दुष्टमार्गीयत्वा
दित्यर्थः। दुष्टत्वमप्यं किंचि
च्छलमन्यदस्तीभविष्यति
दोषस्य पूर्वं साधितत्वान्नावि
शेषणासिद्धेहेतुरिति,, पृ०
१३ पं० १८। वामो दुष्टोऽवैधसु
रामांसादिघटितत्वादिति हे
तुः। अतो न वैधमात्र वैदिक
मार्गव्यभिचारः। सौत्रामण्या
दौ ज्योतिष्टोमे च तैरेव वाक्यैस्त
वि
त्तैवधीयते। अतो विशेषवा
क्यविहितत्वात्सामान्यतो के
ऽप्यश्रुतनिषेधकेभ्यः प्रबलत्वे

नन्देवोन्मेषः। तदप्ति रिक्तेषा
गेपि न विधिः किमुनर्वेमेष
त्रवेदवाक्यस्यैवाभावः। तस्मा
न्नितिधिवाक्येन वाममार्गे सुरा
मांसादिविहितम्, यदाहि वै
दिक कर्मविधिनवैवधेनवा
क्येन यत्र विधीयते कैवकथा
पुनर्विमस्य शिवजनगर्हित
स्येति, जैमिन्याद्याचार्यै र
पि वेदवाक्यानामेव मीमांसा
विहिता न पुनर्वेदविरुद्धानां
वामादितन्त्रवाक्यानां किमु
नर्मीमांसावाक्यानि तदर्थमु
क्तानि, यच्च पुनस्वरकवा
क्येन सुराया अमृतत्वमभि
दधासि, तत्तु तदीयर्थवादस्यम
ति प्रयोजकत्वेन प्रशंसितत्वा

[illegible]

मधुवाताऋतायते इत्याद्
ष्वपि माधिकमर्थपक्षात
मधमेवजिघृक्षति ओमि
तिवेदत्तेर्निरसिष्यमाण
त्वादिति,, पृ० १८ पं० मिता
क्षरायां मधुशब्दस्यगौणप्र
योगः सुतरामिति,, किन्ते
न गौणमुख्यसाधारणस्येव
मधुसामान्यस्य ग्रहणं क
र्त्तव्यस्यैवं पेयत्वस्य निर्दि
ष्टमेवेति,, पृ० १४ पं० १३। विशि
ष्टस्य हेतुकरणे स्वरूपासिद्धे
श्चेति,, अत्र वक्तारि किं स्वेन
सुरायां साक्षिघटितत्व हेतोके
र्थं स्वरूपासिद्धिः किं वासना
मीषु कर्माणि मधुशब्दवाच्य
त्वमपि प्रेतं पाहिकैः। तत्रको

लिपिः शतपथादिब्राह्मणग्र
न्थेषु, किन्त्वक्षराणामादी
नामपि यत्रक्वचिदधिकारे
ऽपि हि तत्तस्मान्नवरूपा लि
ख्येहेतुरिति,, पृ० १४ पं० १४ ॥ ओ
ऽयं हेतुविचारोऽधिकं वक्ष्या
म इति,, यत्तत्त्वमधिकं वक्ष्य
सि वयमपि तस्मै तद्विमर्दयामः
पृ० १४ पं० १७ । सांख्यादितत्त्वहे
तौ किं सांख्यमिति,, अत्र सां
ख्यानिर्वचनाच्छिन्ने सिध्यं
ति किमपि बौद्धत्वसिद्धे
सांख्यमध्यत्वे स्यति,
तद्योगमतमनिर्वाच्छलेनाद्वैत
न्तं तथा च सर्वस्यापि पर्थक्यानि
र्वनीयमायाकार्यत्वादनि
र्वच्यत्वम्, तत्पश्च मलमूल

योरप्यनिर्वच्यत्वादुभयोरपि
वेद्यत्वप्रसक्तिः। किंच त्वमेव घ
टादिनिर्वचनं कुर्विति, नो चेत्
किमस्यैव निर्वचनं जिज्ञाससे
न कोऽपि पदार्थस्तादृश्यो निर्व
चनीयः स्यात्, अथ कोऽयं घटो
नाम यं निर्वचनार्हं मन्यसे, न
नु यत्र घटत्वकम्बुग्रीवाकारव
त्त्वघटशब्दवाच्यत्वादिधर्मा
स्स एव घट इति चेन्न शब्दमा
त्रस्य प्रकृतवचनमिवासाधक
त्वात् सर्वेतरविविक्तत
या प्रदर्शने न तु प्रमेयत्वादि
साधारणरूपेण कस्यचित्
सिद्धिरिति भावः। ननु कपा
लद्वयावयविविशेष इति
चेन्न किमेतद्द्वयं कपाल

घटयोरवयवावयवित्वसम्ब
न्धादिप्रतिपादनपरम्, किं
वा घटस्वरूपप्रदर्शनपरम्;
आद्ये प्रश्नानुत्तरं घटस्वरूप
स्यैव पृष्टत्वात्, द्वितीयेतु
नावयवावयवित्वादयो घ
टसम्बद्धा अवयवित्वेन प्र
तीतेरवयवसापेक्षत्वेन स्व
स्वरूपायोगादित्यर्थः। एतद
न्यद् घटस्वरूपं वाच्यम्, वि
शिष्य वक्तुं न शक्नोमीति चेत्
वद निर्वचनाशक्तौ किं का
रणम्, अननुभूयमान
त्वान्न शक्नोषि निर्विशेष
त्वाद्वा, नाद्यो घटस्वरूप
स्य जलाद्याधारस्य सार्व
जनीनानुभवसिद्धत्वात्

द्वितीयेऽपि वक्तव्यं यन्निर्विशे
षरूपं तज्ज्ञातमज्ञातं वा, ना
न्त्यो बुद्ध्यनारूढस्वभावपदा
र्थस्यापादयितुमशक्यत्वेन
तद्व्यवहारलोपः स्यात्, नाद्यो
ऽप्रमाणगम्यं स्वतो वा प्रमाणा
द्वा, अत्रापि नाद्यः पक्षः। प्र
माविषयस्योत्तरकाले बाध्य
त्वात्सविशेषत्वप्रसक्त्या नि
र्विशेषत्वाभावः स्यात्, तथा
च केयमुक्तं निर्विशेषत्वाद्व
क्तुं न शक्नोमीति, न द्विती
यः। स्वप्रकाशासिद्धेस्तद्रूपस्य
घटस्यापि तथात्वेन प्रमाणवै
यर्थ्यापत्तेश्च, न तृतीयो नि
र्विशेषत्वव्याघातात्, न हि नि
र्विशेषं वस्तु मानान्तरविष

यः समवैतीति, चक्षुरादेः सा
र्वलौकिकस्य प्रमाणस्य स
विशेषवस्तुविषयत्वनिय
मात्, अथ कपालसमवेतो
घटस्तर्हि कपालरूपेऽति
प्रसक्तिः स्यादतोऽवयवी
ति पदं निवेशितम्, शरावे
ति प्रसक्तिवारणाय विशे
षेतिपदम्, किं च घटोऽवय
वी कपालावयवतो भिन्नोऽ
भिन्नो वा, नाद्यो भेदा
श्रयाश्रयिभावानुपपत्तेरव
तोऽवयवाश्रयोऽवयवीति
व्यवहाराभावः स्यात्, ना
घो भेदेऽपि भिन्ने धर्मित्व
भिन्नो वा, नान्त्योऽभेदो
दसत्वेऽनेनैव भिन्नत्वाद

भिन्नत्वमापातो भेदप्रतीते
र्भमत्वं च स्यात्, नाद्योऽपि
न्योऽपि केन भेदेन घटभेदेनैव
चेत्स्वस्थितौ स्वापेक्षत्वेना
त्माश्रयो दोषस्स्यात्, परभे
देन चेत्सोऽपि भिन्नो धर्मिणा
भिन्नो वा, नान्त्योऽभिन्ने भेद
सत्त्वे व्याघातो भ्रमत्वं च तादृ
शस्य स्यात्, नाद्यो भिन्नो नाम
भेदवान् भेदवत्त्वं चेत्केन भे
देन स्वेनैव चेत् तदा आत्माश्रयः।
घटभेदेन चेद् व्योमात्माश्रयः
कुत्र तत्र भेदेन चेत्सोऽपि भि
न्नो स्तौ कार्येत स्याच्चेत्तन्नाये
त्वं स्वेनैव चेत् तदात्माश्रयो, द्विती
येन चेद् व्योमात्माश्रयः आद्ये
न चेच्चक्रकावतुर्थेन चेदन

वस्येति स्थालीपुलाकन्यायेन स
र्वस्याप्यनिर्वच्यत्वम्, अस्ति
चेदागृहस्तर्हि शृणु यत्किंचित्
मांसत्वं च मांसपदवाच्यत्वं परे
च मांसवाचकत्वं नाम मांसत्वा
वच्छिन्नविषयित्वसम्बन्धाव
च्छिन्नप्रकारतानिरूपितबोध
त्वावच्छिन्ननिष्ठविषयतानि
रूपिताश्रयत्वसम्बन्धावच्छि
जनकतात्वावच्छिन्नप्रकारतानि
रूपितेश्वरेच्छीयविशेष्यताश्रय
त्वं मांसत्वावच्छिन्नवाचकत्वम्
मांसपदस्य मांसं वाच्यमित्यत्र
मांसपदनिष्ठाया बोधजनक
त्वप्रकारतानिरूपितेश्वरेच्छी
य विषयतातन्निरूपकजनक
त्वनिष्ठविषयत्वावच्छिन्नवि

षयतानिरूपकबोधनिष्ठविष
यतानिरूपकविषयत्वसम्बन्धा
वच्छिन्नविषयताश्रयोमांसम्।
द्वितीयेच्छायान्तु मांसपदजन्य
बोधविषयत्वप्रकारकेच्छीयवि
शेष्यताश्रयोमांसम्। तथाच
तादृशविशेष्यतानिरूपकविष
यत्वनिष्ठप्रकारत्वावच्छिन्नवि
शेष्यताकबोधनिष्ठप्रकारत्वा
वच्छिन्न विशेष्यतानिरूपक
जन्यत्वनिष्ठप्रकारत्वावच्छिन्न
विशेष्यतानिरूपकनिरूपित
त्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारता
श्रयोमांसम्। इत्थमेवमांसस्य
मांसपदवाच्यत्वम्। भवदुक्तरी
त्यानिर्वचनेचबहुतरमनिष्टंप्र
सज्यते। किंमांसत्वंमारायङ्

विरोधश्च मिति चेदिति वदन् प्र
ष्टव्योपरिष्टाद्दृष्टिः । हन्तभोः ।
किं प्राणिनोऽयमङ्ग मन्यते, प्रा
णितु जीवरूपवर्णतयैकेनाप्यङ्ग
अभिमतम् प्राणिसम्बन्धि
नो देहस्याङ्गान्यभिमतान्यास्ति
क नास्तिक साधारणोऽसौ पुनः
प्राण्यङ्ग विशेषत्वं सर्वास्तिकत
न्त्रसिद्धं वदन् प्रतारयसि मु
ग्धस्वभावाञ्छास्त्रगन्धशून्या
न् स्वीयस्य विद्याबलात्
प्राणिसम्बन्धिनो देहः काम
मङ्ग वत्तो भवतु प्राणित्वमूर्तः
पदार्थत्वस्याङ्गमेवं न घटते,
यत्तु न्यायवार्तिकतात्पर्यटी
काद्यागमविरुद्धकापालि
कानुमाने नरशिरः कपालं

शुचिः प्राण्यङ्गत्वाच्छङ्खशु
क्तिवदित्यत्र शिरःकपालस्य
प्राण्यङ्गत्वमभिहितन्तदपि
लक्षणाहत्या प्राणिसम्बन्धि
देहाङ्गाभिप्रायेणैवेति नतद्दू
ष्यम्, जीवप्राणधारणे, इत्य
नुशासना जीवधातोर्जीवति
प्राणान् बिभर्तीति प्राणधा
रणेनैव जीवतीति स इति भावः
किं चास्तु तदपि तथापि न स्त्री
त्वादौ मांसत्वापत्तिः। शरीरा
णि तु चतुर्विधानि सर्वतन्त्रसिद्धा
नि जरायुजाण्डस्वेदजोद्भिज्जभेदा
त् शरीरत्वं चान्त्यावयवित्वे
सति चेष्टाश्रयत्वम् ननु शरीर
त्वं शरीरेऽचेष्टात्वं यदि शारीरिकि
पादिजातिविशेषस्तदा मन्त्रे

णायन्ननोदनं विनाप्यन्येन के घ
टादौ क्रियोत्पत्तिस्तत्रापि मन्त्रे
णाघटश्चेष्टतामिति प्रयोगानादरा
जातेरङ्गीकरणीयतया घटत्वमा
दायघटादावतिव्याप्तिः यदिशा
रीरक्रियात्वन्तदालम्ब्य यस्या
सितेचेन्नैहितप्राप्तिपरिहारार्था
क्रियाचेष्टेतिलक्षणस्वीकारात्
अन्यथा स्पन्दनमात्रमादाय
घटादावतिव्याप्तिस्स्यात् अ
चेष्टत्वञ्च स्वावच्छिन्नेहृदयविषय
त्वनेन न घटादिक्रियाया अपि क
स्यचिदिष्टानिष्टप्राप्ति परिहारा
नुकूलत्वसंभवेपि घटत्वादिक
मादायातिव्याप्तिः तथाचकिं
मांसत्वमितिचेत् इत्यनुत्तरं
प्राणिसम्बन्धिजरायुजाण्डज

स्वेदजशरीरावयवविशेषत्वंमां
सत्वमितिनकुत्रापिदोषः उ
द्भिजस्यानाग्रहणान्नव्रीहियवा
दिसाधारणयम्। व्रीहियवाघा
दायदोषस्तुत्वदीयकुत्सितकल्प
नायामपिनास्ति किम्पुनरत्र
त्वयिदोषोद्भावनसामर्थ्याभावा
त्, किंचलद्धव्यवहारस्यशा
क्तिग्राहकत्वात्, यदाहिगु
रुर्ज्येष्ठशिष्यमाज्ञापयतिभो
देवीपुत्र, उच्छिष्टचाण्डाल्यै
बलिदानायमांसमाहरमद्यञ्चानय
इतितेननियुक्तः समानीयचोभ
यमाहहेश्रीगुरो १ आनीतमि
दंमांसमिदंमद्यञ्चेतितदवधा
र्य्यपार्श्वस्थः कनिष्ठः शिष्यः
शक्तिंगृह्णाति जरायुजादिदेहा

वयवोमांसपदवाच्यः तथापि इष्टादिवाक्यसंपादितजलविशेषो मद्यपदवाच्यइतिनिश्चिनोति इत्येवंयत्रव्यवहारस्तदेवमांसंमद्यञ्चेति-अनेनव्रीहियवादौमांसत्वापत्यर्थंजीवप्रवेशो छान्दोग्यश्रुतिरुदाहृतातदर्थंशारीरकभाष्यानुसारेणालोचयामः एवंपापिनांगत्यागती विचार्य्यसम्प्रतीष्टादिकारिणामवरोह विशेषमाह (साभाव्यापत्तिरूपपत्तेः अ. ३ पा. १ सू. २२) इष्टादिकर्मकारिणांप्रेत्यधूममार्गेणचन्द्रलोकमारूढानां तत्रयावत्कर्मफलंभुक्तभोगानांततःसानुशयानां अथैतमेवाध्वानंपुनर्निवर्त्तन्तेयथेतमा

काशमाकाशाद्वायुंवायुर्भूत्वाधू
मोभवति धूमोभूत्वाऽभ्रंभवत्य
भ्रंभूत्वामेघोभवतिमेघोभूत्वाप्र
वर्षतितइहव्रीहियवाइत्यादि
नापुनरवरोहमभिधायतदनु
कथमवरोहन्तीत्याशङ्कायाम्
किमाकाशादिस्वरूपमेवावरोह
न्तः प्रतिपद्यन्तेकिम्वाकाशादि
स्साम्यमिति तत्राकाशवायु
धूममेघसाम्यमासाद्यवर्षधारा
द्वाराभुवंप्रविश्यव्रीह्याद्यन्नसंप
र्किणोभूत्वाऽदनद्वारावीर्य्यसि
क् पुरुषयोगेनवीर्य्यमाधिष्ठाय
मैथुन्यद्वारास्त्रीयोनौप्रविश्यरम
णीयाचरणाशीलाब्राह्मणादि
योनिमापद्यन्तेकपूयाचरणाशी
लाश्वपश्वादियोनिमाद्यन्तइत्यभि

हितम् तत्रस्वर्गादवरोहतांयो ब्रीहियवादिरूपः स्थावरभाव आम्नातः सकिंत्तेषां ब्रीहियवादिरूपेणोत्पत्तिरुतान्यैर्दुराचारिभिर्जीवैरधिष्ठितेषु ब्रीह्यादिषु संसर्गमात्रमितिसंशये तद्दृह्जायन्त इतिजनिश्रुतेर्मुख्यमेवतेषां ब्रीह्यादिरूपेणजन्म इतिप्राप्ते (अन्याधिष्ठितेपूर्ववदभिलापात् । अ. ३ पा. १ सू. २४ इत्यनेन सूत्रेण अन्यैर्दुराचारिभिरधिष्ठितेषुब्रीह्यादिषुसंसर्गमात्रमेवनमुख्यंजन्म इत्येवंसिद्धान्तिते पुनः शारीरजैः कर्मदोषैर्यातिस्थावरतांनर इतिस्थावरभावस्य पापफलत्वेन मनुनास्मरणात्कथंपापफलमभ्युदहं ब्रीह्यादिभाव

मवरोहन्तः प्राप्नुयुरिति नचव्री
ह्यादिरूपेणाजनिरेवपापफलन्त्व
स्मर्य्यते नतु व्रीह्यादिसंसर्गमात्र
मपीतियुक्तम्, नहिदुष्कृतक
र्मणः स्थावरभावमापन्नाव्रीह्या
दिरूपेणापरिणमन्ते किन्तुव्री
ह्यादीनधिष्ठायतदवच्छेदेनदुः
खादिभाजोभवन्ति तथावच्छेदः
संसर्गविशेषउभयोः समानोना
स्ति विशेषस्तत्रेति नचसंचि
तदुरितवतामेवावरोहतामयंस्था
वरभावइतिवाच्यम् संचितसु
कृतवतामपितत्स्वीकारात् त
त्रकथमनुद्धृतपापफलत्वेषां
जन्मकृत्याशङ्क्य । श्रमुद्धमिति
शब्दपादात् । अ. ३ पा. १ सू.२४
अस्यायमर्थः यत्नुनरुक्तंपमु

हिंसादियोगादमुद्दमाध्वरिकंक
र्मतस्यानिष्टमपिफलमवकल्प
त इत्येतोमुख्यमेवानुशयिनां
जन्मास्तुतत्रगौणीकल्पनानर्थि
केतितत्परिह्रियते (नशाव्दात्)
वेदात्, शास्त्रहेतुत्वाद्धर्म्माधर्म्म
विज्ञानस्येतितद्धलादेतस्यार्थ
स्याशङ्कनीयत्वात् अत्रायम
भिप्राय: स्थावरभावोद्विविध:
एकोव्रीह्यादीनधिष्ठायतदभि
मानित्वरूपोऽन्यस्तुव्रीह्यादि
संश्लेषमात्र: तत्राद्योव्रीह्याद्य
भिमानेनतदवच्छेदेनदु:खभो
क्तृत्वसद्भावात्पापफलरूपस्तद
भिप्रायरौव (शारीरजै: कर्म
दोषैर्यातिस्थावरतांनर इतिस्म
रणम्, द्वितीयस्तुतदभिमाना

भावान्न पापफलरूपः किन्तु
(रेतःसिग्योगोऽथ) अ०३पा०
१सू०२६। इत्यनुसारेण रेतःसिग्
योगयोनिप्रवेशद्वारा पुनर्जन्म
ग्रहणे द्वारभूतो ब्रीह्यादिसंस
र्गरूपः। तुल्येपि ब्रीह्यादिसम्ब
न्धे तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य
नश्नन्नन्योऽभिचाकशीति, इ
तिवदभिमानाभावेन न संस
र्गिणां दुःखयोगः। अत एव ब्री
ह्यादिषु लूयमाने कण्ड्यमा
नेषु पच्यमाने भक्ष्यमाणे
षु च तदभिमानिनोऽनुशयि
नः प्रवसेयुः। यो हि जीवो य
च्छरीरमभिमन्यते स तस्मिन्
पीड्यमाने प्रवसतीति प्रसिद्ध
म्, संसर्गिणां तदभिमानित्वे

तु व्रीह्यादिना श्लेषेऽपि तदेहिना
मुत्क्रान्तेरवश्यम्भावात्, रेतः
सिग्योगादिना पुनस्तेषां ज
न्माभिधानं न सम्भवेत्, यथा
हि पूर्वं वाय्वादिभूतस्य संस
र्गमात्रं तथा व्रीह्यादिष्वपि सं
सर्गमात्रमेव तस्येति,, तस्मा
द्व्रीहि यवादि साधारण्येन मां
सत्वमारोपयतस्तव व्रीह्यादौ
स्वर्गादवरोहतो जीवस्य प्रवे
शे व्यर्थस्ते प्रयासः। पूर्वतरा
वडुराचारैरधिक्षिप्तत्वेन ते
नापि त्वदभीष्टसिद्धेः। सत्
जीव एव पृथगीश्वरवन्नते
न व्रीह्यादेः प्राण्यङ्गत्वम्,
व्रीह्यवच्छेदेन च तस्य दुःखा

भावान्न पापप्रयोजकत्वमि
ति विदाङ्कुर्वन्तु विद्वांसोऽस्य
साराऽसारतामसम्बद्धप्रला
पस्येत्युपरम्यते, कर्ममात्र
विलोपेद्रुष्ठापत्तावनिष्टत्वे व्य
भिचारइत्यत्रानिष्टे कर्ममात्र
विलोपद्रुष्ठापत्तौ अभिचारइ
त्येवं सम्बन्धेत्वल्प प्रत्ययपरि
तेच सुसुतरत्वम्,, पृ० १६पं०
४ रसरक्तादि क्रमेण रक्तज
नितत्वेऽवश्यंतत्वन्तदाभुक्त
स्यजलादेरसादिक्रमेणजा
यमानत्वस्यसत्वात्फलादिनि
रूढिमत्साधारण्यंरक्तस्यापि
दोषप्रयोजकत्वेभुक्ताहारपा
कक्रमेणरसजनितस्यरक्तस्यै
ऽप्यसाधारण्यमिति,, अहो

द्रष्टव्यात्रास्य लेखनशैली, र
सरक्तादिक्रमो रसजनिते वर्त्तते
न तु रक्तजनिते प्रतीयते आदौ
रसशब्दप्रयोगात्, रसादिक्रमे
ण रक्तजनितत्वं वाच्यम्, नहि
रक्तादिक्रमस्य रक्ते सत्त्वं क्र
मो ह्युत्तरवर्त्तिनि न तु स्वोत्तर
वर्त्तित्वं स्वस्मिन् भुक्तस्य जला
देरन्नपीतस्य जलादेरिति वा व्यं
भोजनन्तु कठिनद्रव्यस्य गला
दधः संयोगः। पानं च द्रवद्रव्य
स्य गलादधः संयोग इति भेदः
अन्यच्च द्रष्टव्यं जायमानलस्य
सत्त्वादित्युक्तम्, कुत्रेति नाभि
हितं सप्तम्यन्तं पदं यत्र जायमा
नस्य सत्त्वं स्यादित्यसम्बद्धप्र
लापएव अन्यच्च दुग्धसाधा

रण्यं रसजनितत्वंमन्यते य
थ्यारसजनितरक्ते तथ्यादुग्धे
पीति दुग्धस्यापि रक्तत्वापत्ति
र्भूते, नजानात्ययंरक्तप्रवा
हिनीनाडीभ्यो भिन्नादुग्ध प्रवा
हिन्यो नाड्य इति तस्माद्रक्तप्र
वाहिनीनाडीद्वारा रक्तजनित
त्वंमांसत्वम्, दुग्धप्रवाहिनी
नाडीद्वारा रसजनितत्वंदुग्ध
त्वम्, अत्रानेन किं मांसत्वं प्रा
ण्यङ्ग विशेषत्वं चेद्व्रीहि यवा
दिसाधारण्य मितिवदता मां
सस्यानिर्वाच्यत्वंसाधितन्त
च्चभक्ष्यत्वे तन्त्र मिति सिद्धम्,
तत्र कौतुकेनोपहासेन च किं
चिदुच्यते, तच्च युक्तमेवय
स्यानुरूपोवलिः यादृशीशीत

लादेवीतादृशोवाहनः खरइति
न्यायान्मांयादृशोःस्यग्रन्थस्ता
दृशमेव प्रतिबन्धुत्तरम् हन्त
भोः शास्त्रप्रमाणगम्यान् विष
यान् मातर्केण योजयतर्क
स्याप्रतिष्ठानात् नापित्वमो
दृक्तर्कनिपुणोयेनविषय
सिद्धिस्स्यात्, यदस्मदृष्टे।
मलमूत्रस्पर्शकरचरणादिप्र
क्षालनंकिमर्थमनुतिष्ठसि त
योःपुनरत्यन्तःसंसर्गसत्त्वात्
अतस्त्वजेदृक्सूक्ष्मदृष्टिं शा
स्त्रप्रमाणमेवाश्रयस्व, यदि
वस्तुसर्वदैव शरीरसम्बन्धं न
अभिचरतितस्यबहिरदृ
श्यत्वेऽन्तःस्थत्वेचकिंम
न्यतेतेसूक्ष्मदर्शिनोबुद्धिः।

तस्मान्मद्यमांसञ्च लोकप्र
सिद्धं दृढव्यवहारगृहीत
शक्तिकमेव स्वीकुरु नो चे
न्मलमूत्रयोरपि निर्वचनं कुरु
किन्त्वावन्मूत्रत्वं प्राण्यन्तर्ग
तजलत्वञ्चेन्नारिकेरजला
देरपि तथात्वान्मूत्रत्वापत्तेः
पीतजलादेः पाकक्रमेण ज
लजनितत्वञ्चेद्द्रवतः साधार
ण्यम्, पीतजलादेः प्राण्य
न्तर्गतत्वेनाधःस्रुतत्वञ्चेत्त
र्हि शरच्छविशेषद्रवस्या
पि तथात्वापत्तेश्च, मेढ्द्वार
स्रुतत्वञ्चेत्तर्हि योनिद्वार
स्रुतेऽव्याप्तिः स्यात्पशुमेत्रे चा
तिव्याप्तिः। मुखतः पीतस्य ज
लादेरधःस्रुतत्वं चेत्तदापि

शुक्रेऽतिव्याप्तं वजरौली क्रि
ययाऽऽकृष्टस्य जलस्य पुनः
स्रुते मूत्रविशेषे चाव्याप्तम्
मेढ्रयोन्यतरस्रुतत्वं चेन्नपुं
सकमूत्रेऽव्याप्तिः स्यात् नपुं
सकस्य योनिसत्त्वे स्त्रीत्वाप
त्ति मेढ्रसत्त्वे पुंस्त्वापत्तिश्च
स्यात् मेढ्रयोन्युभयस्रुतत्वं
चेत्प्रत्येकेऽव्याप्तिः स्यात् प्र
त्येकस्योभयानतिरिक्तत्वं चे
न्नपुंसकमूत्रे पुनरप्यव्याप्ति
स्तदवस्था, यदि सामान्यतः
पीतजलस्याधोद्वारेण स्रुत
त्वं चेत्तदा शुक्रेऽतिसारे चाति
व्याप्तिः स्यात्, किं च पात्रस्थ
जलादिनाभिन्नत्वेनापि दु
र्वचम्,, तथा हि पात्रस्थं

जलं मूत्राद्भिन्नमभिन्नं वा अ
भिन्नं चेन्मूत्रवत्तस्याप्यपेय
त्वापत्तिः। भिन्नञ्चेन्मूत्रप्रति
योगिकभेदोपि भिन्ने धर्मि
ण्यभिन्नो वा अभिन्नश्चेदनेनै
व भिन्नत्वाद्भिन्नत्वव्याघा
तो भेदप्रतीतेर्भ्रमत्वञ्च स्या
त्, भिन्नश्चेद्भिन्नो नाम भेदवा
न् भेदवत्ता च केन भेदेन अ
नेनैव चेदात्माश्रयः। घटभेदे
न चेत् सोप्यभिन्ने धर्मिणि भि
न्नो वा, नाद्यो व्याघाताद्भेद
प्रतीतेर्भ्रान्तत्वञ्च, नान्यः स्वेनै
व चेदात्माश्रयः। मूत्रभेदेन चे
दन्योन्याश्रयः। पटभेदेन चे
त्सोप्यभिन्ने भिन्ने वा, नाद्यो
व्याघातभ्रमत्वयोस्तादवस्थ्या

त, नान्यस्तत्रापि स्वेनैव चे
दात्माश्रयो द्वितीयेन चेदन्यो
न्याश्रय आद्येन चेत्स्वग्रहसा
पेक्ष्यग्रहसापेक्ष्यग्रहसापे
क्ष्यत्वे नचक्रका कुपत्व भे
दे न चतुर्थेन चेदनवस्थेति,
मूत्रस्यापि पात्रक्ष्य जलादि
न्नाभिन्नत्वेनानिर्वचनीय
त्वात्प्रेयत्वं स्यादित्यपहास
व्याजेन जात्युत्तरम्, अहो!
सूक्ष्मदृष्टिः। अत त्यजेदन्दु
राग्रहम्, पृ०१६पं०१५। अत्रय
वनयाकसरसंयावं पायसमा
पूपमेव च। अनुपाकृतमांसा
नि देवान्नानि हवींषि च, म०
अ०५ श्लो०७। अन्नानुपाकृता
नि मांसानि संयावादीन्यदेव

सात्कृते समप्रभक्ष्यत्वमिति॥
अत्रायमभिप्रायः। यदा हि मां
सादीन्यपवित्राण्युपाकरण
कर्म्म विना ऽभक्ष्याणि तदा कि
मुवक्तव्यं देवान्नानिहवींष्य
तिपवित्राण्यभक्ष्याणीति कै
मुतिकन्यायेन तत्कर्म्मप्राश
स्त्यबोधकत्वेनावश्यकत्वेऽप्य
तायोतनार्थे मानववचनम
क्षत्रियादिसाधारण्येनवेति॥
क्षत्रियस्यमृगयायामुपलब्ध
स्यमांसस्योपाकर्म्म विना ऽ
भक्ष्यत्वमुक्तं नतुब्राह्मणस्यापी
ति॥ पृ० ८७ पं०१। पूवंगावस्तु
तौ चेतनत्वेनोपदेशे पूर्वोक्त
श्रुतौ चकीत्यमानत्वेनावस्थ
स्थावरत्वेनाभिमते सुजीव

त्वमिति, ❀ अहो पाण्डित्यम्
नायमेतद्द्विजानाति यद्यूपग्रा
वयोर्जडत्वमस्ति यतस्तयो
श्चेतनोपदेशोनेति वदति,
शृणु भोः। तदाशयम् यच्चे
षेत्त्वौर्जे त्वेत्यादि मन्त्रेषु हे
शाखे इति सम्बोधनं शाखा
धिष्ठातृदेवता विषयम् तथा
हे यूप हे ग्राव इति सम्बोधन
मपि तद्देवता विषयम् ननु
यूपग्रावयोश्चेतनत्वमाशङ्
क्यम् अतः पृच्छाम्यन्यान् विदु
षः कीदृशमसङ्गतं शास्त्रसंस्कार
शून्यत्वव्यञ्जकन्तेऽभिधानम्
पूर्वोक्ते श्रुतेस्तात्पर्यो मानवस्मृते
श्च तात्पर्यो मया तत्रैव प्रदर्शितः
करौ निहत्य कूर्दव्यः तत्वविद्वत्सु

दर्शयस्वतोप्यल्पविद्येषुस्वच्छात्रे
षुमादर्शयेति पृ.१७ प.१४ वे
दानुकूलत्वादितिहेतौविरुद्धत्वं
चेदननुकूलत्वमिति अत्रयद्य
प्यशुद्धिरस्तुमुद्रणाकर्त्तुर्दोष
स्तथापिषष्ठहेतुखराडनेनखराड
पिष्यत इत्युक्तिस्त्वाशामोदका
यिता अहमपिषष्ठहेतुमराडने
नैवमराडपिष्यामीति पृ.१७पं.१७
प्रत्यक्षतोऽनुपलभ्यमानमूलवेद
कत्वंवेदाननुकूलत्वमितिचेत्स
न्ध्यावियोगविधिवोधकस्मृ
तिसाधारणयेनव्यभिचरितोहेतु
रिति अत्रवदतोव्याघातदोषप्र
सङ्गः।यदाताहृशविधिवोधक
स्मृतीत्युच्यतेतदाविधिमन्त्रना
मधेयानिषेधार्थवादरूपपञ्च

विधवेद वाक्यान्तर्गतविधिरूपवेद बोधकत्वेन तन्मूलकत्वमेव तद्बोधकस्मृतेरिति कथं व्यभिचरितो हेतुः नन्वत्र विधिपद प्रमाणात्प्रसिद्धं विनियोग बोधक स्मृतौ व्यभिचार इति चेन्न विनियोग बोधक स्मृतेर्ब्राह्मणवाक्यमूलकत्वात् शतपथादिभिर्मन्त्राणां विनियोगाः प्रदर्शिताः अयंमन्त्रोऽस्मिन्कर्मणि विनियुक्त इति किंच कस्य सा स्मृतिः किंरूपा वेत्यपि न त्वया प्रदर्शितम् किं सन्ध्याविनियोगेषु जलविनिर्मोके विभ्रान्तः तस्यापि शिष्टाचारत्वं न स्मृतित्वं नहि स्मृतिषु जल निर्मोको विहितः परन्तु प्रामाण्यमस्ति तच्छिष्टाचारस्येति किंच कथन्त्वया

निर्गीतिमनुपलभ्य मानवेदमूल
कत्वं वेदानामानन्त्येन द्रष्टुमस
मत्वात् अतःशिष्टाचारस्तत
त्र प्रमाणमिति पृ० १८ पं० १ अनु
मितवेदमूलकत्वाभावश्च सन्ध्या
दीतिकर्त्तव्यताकलापवत्स्वरूपा
सिद्ध इति अत्र दृष्टान्तावच्छेदे
न हेतोरसिद्धिर्नहि सन्ध्यादीतिक
र्त्तव्यतायामनुमितवेदमूलकत्वा
भावोऽपि निर्गोतुं शक्यस्त्वयावेदा
नामानन्त्यादित्यनर्गलन्तेवचः
पृ० १८ पं० ५ वैदिकत्वेऽङ्क विनि
योगमनुवादत्वस्य सकल तन्त्र
ग्रन्थेषु पद्धति प्रकरणे सत्वेन तद
भावः स्वरूपासिद्धो हेतुरिति
अहो अस्य कुवासना प्राबल्यम्
सन्ध्या विनियोगादि पद्धतौ वैदि

क विनियोगानुवादत्वं न प्रतीयते वामतन्त्रादिशिष्टजनगर्हितपद्धतौ तत्प्रतीयते, नह्येकदेशेन वामतन्त्रस्य वेदानुकूलत्वेन स्वरूपासिद्धिरुद्भाव्या तस्य म्लेच्छ बुद्ध शाक्यादिग्रन्थमात्रे सत्वात् तेषु वामतन्त्रे च वेदानुकूलत्वमपि विषयुक्तान्नवदग्राह्यमेवेति न स्वरूपासिद्धिः पृ॰ १८ पं॰ ७ मृतमनुष्य देवतोद्देश्यकेत्यादिहेतुर्न धर्म्मे प्रामाण्याभावसाधकः पितृश्राद्धादिपैतृककर्म्मणो वैदिकत्वात् तस्मान्निर्मूलत्वाद्व्यर्थमेव मृतजीवानां रघूमणशिविप्रभृतीनां जीवतां वा नहुषादीनां देवत्वमापन्नानामुद्देशेन कर्मबोधक वेदे व्यभिचार प्रदर्शनेन वाग्जालं प्रसारितम् पृ॰ १९

पं॰३ यथेमांवाचंकल्याणीमिति याजुषोमन्त्रोनहिसर्वजातिशुद्धिकरत्वेप्रमाणम्॰ तस्यदक्षिणाप्रकरणस्थत्वात्॰ सूनृतवाचः प्रकाशकत्वाच्च, नापीडाभक्षणम्॥ दैव्याअध्वर्य्यवउपहूताउपहूतामनुष्या॥ इत्यादिशतपथवाक्येमनुष्यपदेनशूद्रचाण्डालादयोपिवामतन्त्रवद्ग्राह्याः। यजमानपंचमानाइडांभक्षयन्तीतिविशेषवाक्यात्, वषट्कर्त्तुः प्रथमभक्ष इति वाक्येनप्राथम्यविधानात्प्राथम्यविशिष्टभक्षणविधानाद्वा शूद्रादिभिन्नानान्तेषामेवग्रहणात् पृ॰१९. पं॰११ भक्तिकाण्डीयसर्वशुद्धिकरत्वस्यधर्मशास्त्रेस

त्वेनव्यभिचार इति तः पञ्चमोहेतुः श्रुतिस्मृत्यनुवादिकत्वमप्यापि भ्रष्टबोधइति, अहो कीदृशोऽस्यव्यामोहः यन्निरुक्तका राडीयशास्त्रे श्रुद्धिकरत्वे पुराणादिसंमतत्वेन श्रीरामभक्त्यानाविकारिनिष्ठश्रुद्धेर्नग्रहणमपितु तत्तन्मार्गीयसंस्कारादिनाचाराडालादिनिष्ठसंस्कारवत्त्वमिहिविशिष्टम् नहिनाविकादिषु शिष्टत्वेन संस्कृतत्वम् केवलमीश्वरानुरागविशेषेणैव श्रुद्धत्वमिति नरामानुजादिसम्प्रदायवल्लभादिसम्प्रदायवच्चचाराडालादीनां दीक्षितत्वं धर्मशास्त्रेषु विहितमिति नतेषु पुराणेतिहासेषु व्यभिचारः। उपाध्यायश्चवनन्तु

महदसङ्गतम्, प्रमाणत्वाभा
वरूपसाध्याव्यापकत्वात्,,
पृ०१९ पं०१३। यत्ते वेदविरुद्धत्वं
नामवेदाननुकूलत्वं वेदवाक्या
विरोधिवाक्यार्थबोधजनकत्वमि
ति अत्रात्माश्रयदोषो नास्यप्र
तीयते वेदविरुद्धत्वलक्षणस्य वे
दवाक्यविरोधीतिवाक्यघटितत्वा
त्स्फुटतयात्माश्रयदोषः प्रतीय
ते तस्माद्दुष्टमिदं लक्षणम् अ
तो वेदविरुद्धत्वं च श्रौतस्मार्तक
र्माधिकारिदेशकालाङ्गादिभ्यो
भिन्नधूर्त्तकल्पितानुष्ठीयमान
त्वम् यथा ज्योतिष्टोमादौ विधि
विहितपश्वालम्भनत्वाद्धितस्मि
न्नेव काले तस्मिन्नेव देशे तत्तन्त्र
याजाद्यङ्गकर्मोत्तरं तत्तत्कान्ड

करणकर्त्तृदेवतोद्देश्यकं तत्तद
धिकारिकर्त्तृकं ततोभिन्नदैशि
कभिन्नकालिकादि सर्वन्तद्धे द
स्मृतिविरुद्धमिति कथं वा न भा
र्गवेदस्मृति विरुद्धं नस्वीकरो
षि, तस्मादनेनैव वेद विरुद्ध
शब्दार्थकरणोनाग्रिमः सर्वोपि
विचारः कवलितः। वेदवाक्य
विरोधिवाक्यार्थबोधजनकार्था
र्थकरणे न तदुत्थानादिति ॐ
पृ·२ पं·४ तन्त्रं च स्मृतिरिति
अत्र वामतन्त्रं चानुभवः सोपि
धूर्त्तव्यभिचारिणां न शिष्टानां
कृत्वाप्यार्षग्रन्थेषु वामस्यानुक्त
त्वात् पं·५ शिष्टाकोपेऽविरु
द्धमिति,, वामेतु शिष्टकोपत्वाद
विरुद्धमेवेति सूत्रार्थास्पर्शित्व

मू० हन्त भोः। पूर्वतन्त्रमान्यश्रु
तिस्मृतिभिर्विचारमुत्थापयसि
जैमिनिसूत्रैश्च वेदार्थमीमांसके
र्वाममार्गोऽतिगर्हितं साधयि
तुमिच्छसि मुधैव विभ्रान्तोऽसि
नहि धूर्तप्रणीता ग्रन्थाः स्मृतयो
भवितुमर्हन्ति यदि चाण्डालीच
र्मकार्य्यादि स्त्रीष्वप्याचारः प्र
काश्यते तर्हि स्मृतित्वं नु दूरापेत
मनुभवत्वमपि दुर्लभं स्यात्, त
स्मात्तूष्णीं भव मा परिश्रमं कुरु
वामतन्त्रे स्मृतित्वं साधनाय य
त्र हि चाण्डाल्यादि सम्बन्धः स्व
वीर्य्यहोमस्तच्छिष्टभक्षणांच यो
निप्रक्षालिततोयतर्पणादि नि
न्द्यं कर्म विहितं तान् ग्रन्थान् स्मृ
तित्वेन स्वीकुर्वन्नुपहसनीयः स्यात्

अत्र प्रष्टव्यो भवान् तादृशानि
निरुद्धमार्गीयग्रन्थेषु स्वकित्वं
सिसाधयिषुः। याः खलु ब्राह्म
णादिपूज्यवर्णानां स्त्रियस्ताश्च
कथं नाभिमताः। प्रत्युत चा
ण्डाली वेश्या यवनी रजक्या
द्या गृहीताः। वद किं तत्र कार
णम्, अर्थस्ते प्रयासो वाममा
र्गीयतन्त्रस्य स्वतित्व साधना
येति,, पश्येदानीं वाममार्गीया
चारम्,, उक्तंच,, मनोरथमयी
सिद्धिस्तस्य हस्ते सदा भवेत्। पर
दारान् समालिङ्ग्य सम्पूज्य पर
मेश्वरीं स्मरन्। अहो वामाचारः
स्वदारालिङ्गने परमेश्वरी न
प्रसीदति वाममार्गीयैश्च ते प्र
णीतग्रन्थे परदारालिङ्गनेनै

वप्रसीदतीति, अन्यच्च, हस्ता
हस्तिकयायोगं कृत्वा जपमास्त
वं पठेत्। योनिं वीक्ष्य जपेत्स्तो
त्रं कुबेरादधिको भवेत्॥२६॥ त
रुणीं सुन्दरीं रम्यां चञ्चत्काम
गर्विताम्। समानीय प्रयत्नेन
संशोध्य न्यासयोगतः॥२८॥ प्र
सूनमञ्चसंस्था पृथिवीं क
रितां चरेत्। मूलचक्रं संभा
व्य देव्याश्च रणसंकुलम्॥२९॥
अशोकरसयुतैर्योनिं प्रमज्यात्तु
न्ध्या यत्नतः। संयोगीमुपजप्त
व्यं सर्वविद्याधिपो भवेत्॥३१॥
श्मशाने पर्वतप्रान्ते एकलिङ्गे
पि वा सुरवे मुण्डयोनौ ऋतौ
स्नात्वा गेहे वेश्यागृहे तथा।
३३। कुट्टनीगृहमध्ये च कदली

मण्डपे तथा पठेन्नामसहस्रका
ख्यं स्तोत्रं सर्वार्थसिद्धये ॥३४॥ वि
हरे च्छववल्लोके पृथ्वी ब्रह्माण्ड सने
पिका मुक्त के शौ वा सामै पुनी
श्वपने स्थितः ॥३८॥ जप्त्वा काली
मठे स्तोत्रं खेचरी सिद्धिभाग्भ
वेत् चिकुरं योगमासाद्य सु
श्रोतारणमेव च ॥३९॥ आलो
कयन् दिशावासः परशक्तिं वि
शेषतः सुरा श्रीदक्षिणं का
लीं योनिं स्वकरं चरेत् ॥४१॥
कादम्बरी लिंगमध्ये: सुरारिद्धे
श्च सा सबै: । योनिक्षालित लो
ये श्च योनि लिङ्गामृतै रपि ॥४१॥
लजातकुसुमैः पूजां जपान्ते
तर्पयेच्छिवाम् ॥ सर्वसाम्राज्य
नाम्नात्सुस्तुत्वा नत्वा स्वशक्ति

नः। ५६। वैश्याललाम हेमवाति
स्याश्रु खनतत्परः। तस्या योनौ
सुरवन्दस्या तद्रसं विलिहन्नुप
पेत्। ५८। नृत्यपात्रमुद हे गत्वा म
कारपञ्चकान्वितः। प्रसूनम
ञ्चे संस्थाप्य शक्तिन्यासपराय
णः। ६०। पात्राणां साधनं कृत्वा
दिग्वस्त्राणां समाचरेत्। समा
प्यचक्रं तन्मूले तत्र सावरणां
जपेत्। ६१। शतमाले शतके
शे शतं सिन्दूरमण्डले शतत्रय
कुचद्वन्द्वे शतं नाभौ महेश्वरि
६२। शतं योनौ महेश्वरि। ६३।
शतं योनौ महेशानि संयोगे
च शतत्रयं जपेत्तत्र महेशानि
तदन्ते प्रपठेत्स्तवम्। ६४। अ
न्यामालिङ्ग्य प्रजपेदन्यां स

न्त्रमेवैव पठेत्। अन्यांस्सम्पूज
येत्तत्र त्वन्यांसंमर्द्दयन् जपेत्
।८७। अत्रत्वामि मिर्भिस्सौपाया
अधिकारेऽभिहितः स्त्रीयातु
न्यस्मै दातव्या चाण्डाली नु
स्वयम्भजन्ति वामिनः। अहो
एषांस्सत्याचारः। यदि यक्षी
भूतकूष्माण्डवेतालादीनां भ
वेदपि सिद्धिः किन्त्वया करि
ष्यन्ति वा लभ्यजातिरूपां
मोक्षकार भूतां सिद्धिं विहा
यय दर्थं विश्वामित्रो राजर्षि
दर्शवर्षसहस्राणि घोरं तप
श्चकार तस्मादि मे वामिन
ऐहलौकिकफलदां समीह
न्ते अहो मन्दभाग्यमेषाम्
अहो मौढ्यमेषां हतमेषां ज्ञा

नंकलिनेति विजानीमः। प
च्छि वाममार्गीयपुस्तकाभ्यासे
भ्यस्तितत्वं प्रतिपद्यन्ते, अ
न्यच्चोक्तम्, अन्यायोनौ ध्वजं द
त्वापुनः पूर्वदाचरेत् अवधानसह
स्रेषु शक्तिपातशतेषु च ६८ राजा
भवति देवेशि मासपंचकयोगतः य
वनीशक्तिमानीयगानशक्ति पराय
णाम् ६९ अत्र यवनीशक्तेरानय
नं विहितं वाममार्गीयैस्तनौ तस्या
आनयनं विनात्वस्मत्व विनाशः कथं
स्यादिति तस्य हेतोरवश्यमानेतव्या
सापि गानशक्ति परायणाऽन्यथा
ऽऽनन्दाभिव्यक्तिर्न भविष्यतित
स्याः संभोगानन्तरं दीपयोनि
प्रक्षालिततोयेनतर्पणं च भविष्य
तीत्यादि वहुभिर्हेतुभिस्तस्यायवं

वीरशैवैरावश्यकत्वे न्यासैश्चोक्त
मिति, कामार्त्तशक्तिमानीययोनौ
तु मूलचक्रकम् विलिख्यपरमेश्व
रीत्वमन्त्रं लिखेच्छिवे तल्लिङ्गन्
न्यसेद्देवि सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित्
अमृतानि च शास्त्राणि वेदादीन्यपठे
दुवम् ७७ सिन्दूरतिलकोद्देविवे
श्यालयो निरन्तरम् वेश्यागृहे नि
शाचारो रात्रौ पर्य्यटनं तथा ७८
शक्तिपूजा योनिदृष्टिः खड्गहस्तो
दिगम्बरः मुक्तकेशो वीरवेषो कुल
मूर्त्तिधरो नरः ७९ कालीभक्तो भ
वेद्देवि नान्यथा क्षोभमाप्नुयात् दु
ग्धस्वादीयोनिलेही सर्वदासल
घूर्णितः ८० वेश्यालतासमायो
गात्मासात्कलब्धतास्वयम् वै
श्यां चक्रसमायोगात्कालीचक्रस

मस्तयम् ८१ वेश्यादेहसमायोगा
त् कालीदेहसमस्तयम्: वेश्या
मध्यगतं वीरं केशापश्याभिसाधक
म् ८२ श्मशानस्थो भवेत्स्वस्यो
गलितं चिकुरम्बरेत् दिगम्बरः स
हस्रं च सूर्य्यपुष्पं समानयेत् ९१
स्ववीर्य्येण युतं कृत्वा प्रत्येकं प्रजप
न्हुनेत् पूज्य ध्यात्वा महाभक्त्या
क्ष्मापालो नरो भवेत् ९२ नरत्वके
शं स्ववीर्य्यं च पद्मसंमार्जनीगतम्
स्तथा मुक्तकेशो दिशावासो मंत्रपुरःसर
९३ इत्येवं रूपाचारेषु स्मृतिपरं
प्रयुंजानः कथं नोपहनीयस्स्यात्
वाममार्गीयकर्मणि च नय:
ह्रशाद प्रयोगोऽन्यथा यद्व
नतन्त्रीयकर्मण्यपि यद्वाश
स्त्रप्रयोगस्स्यात् वाममार्गीयस्य

भासानां स्मृतित्वे किमपराद्धं यद्
वन्तन्त्रेण येन न तत्स्मृतित्वे
न स्वीक्रियते किम्भोः वेद
विरुद्धम्बाममार्गम्वदन् प्रष्टव्य
स्त्वं चाण्डालीयोनिक्षालितजले
न तर्पणम्वेदे कविहितं किंवा
चाण्डालादीनामपि संसर्गमात्रं
दर्शयिष्यसि यत्र शूद्रादयोप्य
धिकारिणो न भवन्ति किम्पुनश्चाण्डा
लादयोऽधिकुर्य्युः। किञ्च शूद्रा
णां वेदाध्ययनानधिकारनिब
न्धनो ब्रह्मविद्यास्वनधिकारो वे
दान्तचतुरध्याय्यां व्यासदेवैरप्य
भिहितस्तथाहि (क्षत्रियत्वगते
श्चोत्तरत्रचैत्ररथेन लिङ्गात् अ०१
पा०३ सू०३५ अस्यार्थः॥ शूद्र
पदेन प्रकरणे सम्बोधितोऽपि जान

श्रुतिर्नाम राजा क्षत्रिय उत्तर प्रकर
णे तस्योपनिषदि क्षत्रियत्व सि
द्धेः सुस्पष्टमुक्तत्वात् (संस्कारप
रामर्शात्तदभावाभिलापाच्च अ० १
पा० ३ सू० ३६ अस्यार्थः॥ इतो
पि हेतोः शूद्रजातेरनधिकारः य
तस्तत्रोपनयनादयस्संस्कारा
परामृश्यन्ते तंहोपनिन्ये अधी
हि भगव इतिहोपससाद शूद्रस्य
चैकजातित्वेन तदभावाभिलापा
च्च उपनयनादि वैदिक संस्कार शू
न्यत्वस्याभिधानादित्यर्थः (तद
भावनिर्धारणेचप्रवृत्तेः) अ० १
पा० ३ सू० ३७ अस्यार्थः॥ शूद्र
त्वाभाव निर्णयेच तत्र वेदे आ
ख्यायिका सुच ऋषीणामुपन
यनाख्य संस्कार कर्मणि प्रवृत्ते

रभिधानात् (श्रवणाध्ययनार्थप्र
तिषेधात्स्मृतेश्च, अ० १ पा० ३ सू०
३८ अस्यार्थः ॥ इतोपि शूद्रोन
धिकृतोवेदे तस्याध्ययनश्रवण
प्रतिषेधात् श्रवणप्रतिषेधोय
था पद्युहवा एतच्छ्मशानं यच्छू
द्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्
यदि नाम श्रवणं वेदस्यानधिकृ
तः शूद्रस्तर्ह्यध्ययनाधिकारस्त
स्य दूरपराकृतः सोयमर्थोवेदा
न्त मीमांसाश्रमजुषां विदुषां नति
रोहित इत्युपरम्यते षष्ठेऽध्या
ये प्रथमे पादे पूर्वमीमांसायां जै
मिनिरपि बहुना युक्तिकलापेन
शूद्रस्याध्ययनमाशङ्क्य प्रत्यवो
चत् तथाहि(चातुर्वर्ण्यमविशे
षात्) २५ अस्यार्थः ॥ चत्वारोपि

वर्णा अधिकुर्वते याज्ञिके कर्म
णि वेदे,, यजेत, जुहुयादित्याद
व विशिष्याधिकारश्रवणात् ,,
निर्देशाद्धात्रयाणां स्यादग्न्याधे
ये ह्यसम्बन्धः क्रतुषु ब्राह्मणश्रु
तेरित्यात्रेयः।२६। वा शब्दः पूर्वप
क्षं व्यावर्त्तयति त्रयाणामधिका
रः स्यात्, कुतः। अग्न्याधेये त्र
याणां निर्देशो भवति, वसन्ते ब्रा
ह्मणोऽग्निमादधीत, ग्रीष्मे रा
जन्यः। शरदि वैश्यः। इति शूद्रस्या
धिकारे श्रुतिर्नास्तीत्यनग्निः शू
द्रो भवेदनधिकार्यग्निहोत्रादि
के कर्मणि ब्राह्मणादीनेवत्रीन
धिकृत्य सा श्रुतिः प्रवर्त्तत इत्या
त्रेयो महर्षिर्मन्यते स्म,। निमि
त्तार्थेन बादरि स्तस्मात् सर्वा-

धिकारः स्यात् ॥ २७ । शूद्रस्या
नधिकार इति नियुक्तं यतोऽर्थि
जातमधिकृत्य, यजेत जुहु
यादिति श्रूयमः सत्यासति
प्रतिषेधवचने, न शूद्रान्वा
वर्त्तयति ततश्च शूद्रा अप्य
धि कुर्युरिति बादरेः पूर्व प
क्षः । ततः उत्तरसूत्रम् ॥ अपि
वाऽन्यार्थदर्शनाद्यथाश्रुति
प्रतीयेत ॥ अपिवाशब्दः पू
र्वपक्षनिराचिकीर्षया ब्राह्म
णादयो हि आधाने श्रूयन्ते
तत्र वसन्तादिकालश्रवणे
न ब्राह्मणादित्रितयकर्त्तृकं
वसन्तादित्रितयकालकर्माधा
धानमित्यर्थलब्धेः । तथा चे
दं शूद्रवर्जितानामेवानुक्रम

णं भवति,, बार्हस्पिरं ब्राह्म-
णस्य सामकुर्य्यात, पार्थुर-
श्मं राजन्यस्य, रायोवाजीयं वै-
श्यस्य, इति शूद्रस्य सामतु ना
न्ति तथान्यत्रापि, पयोव्रतं ब्रा
ह्मणस्य, यवागू राजन्यस्य, आ
मिक्षा वैश्यस्य, इति। तथाऽधा
ने पि, अवस्तुप्रक्रमेव ब्राह्मणो
ऽग्निमादधीत, एकादशसु राज
न्यः। द्वादशसु वैश्यः। इति, एवम
ब्रह्मसामकमव्रतकमक्रमकं च शू
द्रस्य प्रयुक्तमपि कर्मनिष्फ
लं स्यात्, तस्मान्न शूद्रो जुहुया
न्न यजेत चेति,, पुन: पूर्वपक्षयां
चकार,, निर्देशात्तु पक्षे स्यात
२९। नैतदेवं, शूद्रस्याप्यभावा
दनधिकारोऽग्निहोत्रादिषु, इ

ति, तस्मात्तिष्ठ स्वाध्यायान
म, य एवं विद्वान् ग्निमाधत्ते, इति
शास्त्रं सर्वाधिकारं स्यादिति,, त्रै
गुण्यान्नेतिचेत्, उ०। यद्यपि म
ब्रह्मसामादिकं कर्म प्रयुक्तम
पि फलं न साधये दिगुणं यत इ
ति, तत्परिहर्त्तव्यम,, न काम्य
त्वात् उ०। नैव परिहारः। काम्य
त्वात्कामयिष्यते स्तद्भ तथा हि
अभीवर्त्तं नाम ब्रह्मसाम तद्धि अ
नारभ्य किञ्चिदाम्नातमविशे
षेण,, वषुर्विमत आदध्यात्
इत्यनियतकामके शूद्रस्य
नियम्यते,, मस्तु शूद्रस्य इति
सम्बन्धदर्शनादध्यवसीय
ते, मस्तु एव शूद्रस्य तस्माच्चा
तुर्वर्ण्यमधिक्रियत इति,,

संस्कारे च तत्प्रधानत्वात्॥३०॥
अस्यार्थः। न्नु तावत्संस्कारः
शूद्रस्य न श्रूयते। इति सत्या
बर्त्तमानः शूद्रस्याधिकारं न
व्याबर्त्तयति याज्ञिके कर्मणि
पुरुषप्रधानो हि संस्कारः पु
रुषं संस्करिष्यति यस्य च यः
संस्कारः कर्त्तव्यत्वेनाभिहितः
स तस्यैवावश्यको नान्यस्ये
ति शूद्रस्यव्रताश्रवणान्नान
धिकारसिद्धिस्तस्येति॥ अ
पि वा वेद निर्देशाच्छूद्राणां
प्रतीयेत॥३१॥ अपि वा शब्दः
पूर्वपक्ष निराकरणार्थः। वेद
निर्देशात्। वेदे हि त्रयाणामे
व निर्देशो भवति। बसन्ते ब्रा
ह्मणमुपनीत। ग्रीष्मे राज

त्वम्, शारदिवैश्यमिति शू
द्राधिकारसमर्थकवेदभाष्या
दनधिकृतः शूद्रो यज्ञम्,, इ
त्येवं पूर्वोत्तरमीमांसासु शूद्र
स्याधिकारो निराकृतः कथ
म्पुनश्चाण्डालादयोऽधिकुर्यु
रिति वाममार्गीयग्रन्थेषु चा
ण्डाल्यादिशक्तिषु यवन्यादि
शक्तिषु चात्याचारोऽभिहि
तः। कथञ्च तत्र वेदविरुद्धत्वं
नास्तीति त्वमभिदधासि,, क
थञ्च स्मृतित्वं व्यवस्थापयि
तुमिच्छसि तत्रेति कथं वा पू
र्वोत्तरमीमांसादिसूत्रैस्ताद
दृशं शिष्टगर्हितङ्कर्म सिषा
धयिषसि, अहो व्यामो
हो यस्त्वतिपवित्रतमेन वैदि

क कर्मणा ॥ यपवित्रस्वा मम्मा
र्गीयस्य कर्म्मिसङ्कमयितुमिच्छ
सि, तस्मान्न वामादिनिषिद्ध
तन्त्राणां स्मृतित्वं नापितस्र
तिपादकस्मिस्मार्त्तमतस्तेन
वामतन्त्रवाक्येन श्रुत्यर्थेस-
ङ्कोचमभिदधानउपहनीयः
स्यात्, हन्तभोः। वाममार्ग
स्थितो विप्रस्तुलसीं न स्पर्शे
त्कचित। न स्पृशेद्देवं विं
प्रं प्रणमेन्न च वैदिकम्, यो
निक्षालिततोये स्तथा निलिप्त
स्तैरपि स्वजातकुसमैः पूज्यां
जपान्ते तर्पयेच्छिवाम्, वेश्या
लताग्रहे गत्वा तस्याश्चुम्बन
तत्परः। तस्या योनौ मुखन्दत्वा
तद्रसं विलिहन्जपेत्, कि

मत्र तुलसी भागवत विप्र वैदि
क विप्र स्पर्शाद्वृष्यायोनिप्रक्षा
लितजलस्पर्शः श्रेष्ठतरं मन्य
से, किंवा वृष्यायोनौ मुखवन्द
त्वा यदुक्तं विलेहन्नन्तकेष्टत
रम्, किमत्र मुक्तलज्ञानां बा
मिनां समाधानम्, किं कुत्रचि
द्वेदेस्मृतिषु च वैदिक विप्रं न
स्पर्शेदथ च वृष्यायोनिरसं
विलिहीत्युक्तम्, किञ्च यत्र
त्रयज्ञाद्यधिकारोपि निराकृ
तः कथं तत्र यवनी शक्तिमा
नीय गान शक्ति परायणामि
ति गान शक्ति विशिष्टायाम्ले
च्छजातीयस्त्रियआनयनं घटे
तेति, तस्मान्मद्यमांसादिभक्ष
कैर्धूर्तैर्व्यभिचारिभिश्च प्रणी

तेषु ग्रन्थाभासेषु नैव शिष्टैः
स्वीकृतत्वमिति व्यर्थस्तेषु ग्रन्था
भासेषु स्मृतित्वसाधनाय स्मृ
तित्वमभ्युपगम्य च तद्विष
यस्य स्मार्त्तत्वेन विधेयत्वसा
धनायेति,, पृ० २० पं० ७। तत्र हि
वैधातिरिक्तत्वं यागातिरिक्त
त्वं वा संकोचयतु स्यतया तांत्रि
कयागेपि निषेधासंभवादि
त्युक्तम् ॥ अत्र यो यमनेन नि
षेधशास्त्रस्य मा हिंस्यात्सर्वाभू
तानीत्यस्य न सुरां पिवेदित्यस्य
च वाममार्गीययागातिरिक्त
त्वेन संकोचः कृतः स च न संभ
वति वाममार्गीयकर्मणो वै
धातिरिक्तत्वात्, यागातिरि
क्तत्वाच्च, निषेधविषयत्वा

त, यत्र हि चाण्डालस्यापि मिः
लच्छ-धोऽभिहितः। अथ चवे
श्याशो निक्षालितजलतर्पे
णादिर्विहितः स्ववीर्य्यहोम
स्य तत्र प्रामाणिकत्वं स्मृतित्व
त्व प्रलपन् सतां शोचनीयता
हं, हि ह्यणीयो विद्वज्जनोपह
नीयश्च, किं च वाममते प्रा
माणिकत्वस्यैव विवादग्रस्त
त्वात्तत्र च विधिवाक्यानिया
नि कथं तानि विधायकानि
स्युः। किं चेमे वामिनो यदि
वाममार्गीयं कर्मकर्त्ते व्यभि
चैवं प्रामाणिकस्य कस्या
पि किम्पुनर्वैदिकस्य दृष्टौ
ये पुस्तके मे स्मेरन्नपि, तत्र
स्थानवाममार्गीयकर्म्मणिय

ज्ञ शब्दानामर्थत्वमिति सर्वैरि
कताकूपायितम्, किं च मा
हिंस्यादित्यादीनि, अग्नीषो
मीयमित्यादीनि च श्राद्धे मांस
विधायकानि स्मृतिवाक्यानि
अश्वालंभं गवालम्भमिति
युगभेदव्यवस्थया कापित्रा
दिदेवतोद्देश्येन मांसनिषेध
कानि चान्यत्रार्षग्रन्थेष्वा
चार्यग्रन्थेषु च कालव्यवस्था
निलम्बनं वा मांसं साधयितुं प्रवृ
त्तः। अतः स्वकर्तव्यं विस्मृत्या
न्यत्रान्यसाधितविषयेषु किम
र्थमनुधावसि, तस्मादस्यान्वे
ष्टुतरमनिष्टं प्रसज्येत, यत
नु दृष्टा क्वचिदितरत्र स्वपि वा
मवद्यति किं चित्साहाय्यसत्त्वा।

त्वान्यपि तन्त्राणि वेदबाह्यानि
न स्युः। न वयं वामतन्त्रे यवनत-
न्त्रे वद्दूषयामो यदि वेदबाह्यं
स्मृतिबाह्यं वा त्वमभ्युपगच्छेः
किंच यथेष्टापूर्त्तकर्माणि स्मृ-
तिषु प्रतिपाद्यन्ते तथा वाम
कौलमार्गीय कर्माणि किन्त्वा
सुकर्त्तव्यत्वेन प्रतिपाद्यन्ते ये
न वेदस्मृतिबाह्यं न स्वीकरोषि
किंच वेश्यायोनिक्षालितत्तो
यतर्पणविधायकवाक्यानि
जिह्वया योनिरसविलेहनवि-
धायकानि च योनिमुखप्रक्षे-
पपूर्वकमन्त्रजपविधायका-
नि स्ववीर्य्यहोमतद्भक्षण-
णविधायकानि च चाण्डाली
कर्मकारी चेत्यादि वाक्यानी

व वामकौलतन्त्रवच्छ्रुतिस्मृति
ष्वकुत्रचित्त्वया दृष्टानि येन श्रु
तिस्मृतिभिर्वाममार्गं व्यवस्था
पयितुमिच्छसि स्मृतिषु च त
मन्तर्भावयितुमिच्छसि, तस्मा
त्किं ; निर्मूलकथनेन
विरमेत्यलमपारादित्यलं पल्ल
वितेन ११ पृ० २१ पं० ७। अत एव
चैतरेयब्राह्मणे सोमे राजन्या
गते अजं वोक्षाणं वेत्यादिग्र
न्थेन प्राप्तगोवधस्यापि अश्वा
लम्भमिति स्मार्त्तनिषेधेन सा
क्षाद्विहितत्वाद्वधः। आरात्ते गो
घ्ने उत पुरुषघ्ने क्षयद्वीराय सु
म्नमस्मे ते अस्तु।१।६।९। इत्यृ
ग्मन्त्रोदितगोहिंसकवधस्य त्वा
नुमितगोहिंसानिष्पापज

नकलेनगवालम्भस्यसाक्षाद्वि
धेयत्वेनपूर्ववाक्यानुमितमो
हिंसाविधेश्च मन्त्रब्राह्मणयोर्गो
वालम्भीयमन्त्रकाण्डस्याध्व
र्यवस्यत्वं अग्निनाहविरिति
तिश्रोत्रपानायाज्यानुवाक्या
सू० का० ५९।६। अनुसारं । गो० २०
।६६। तामिन्द्रमित्यादेर्यः विरोधे
परस्परवाधे विकल्पसमुच्चया
दि प्रसक्तौ विकल्पस्याष्टदोष
ग्रस्तत्वेन समुच्चयस्य भावाभाव
विरोधेनासंभवादवश्यं युगभे
देन व्यवस्था प्राप्तावश्यालम्भ
मिति पराशरादि तथा कलियु
गविषयनिषेध व्यवस्थया बा
धः कलौ व्यवसीयते, इति कु
अपामीमांसादिशास्त्रविरुद्धं

कलियुगवृत्तिगोमेधनिषेध
व्यवस्थां निरस्य तदविरुद्धां
युगभेदव्यवस्थां दर्शयामः। अ
हो पराशरोदितस्मृतेरभिप्रा
यज्ञाने कीदृशो विभ्रान्तो यः
स्मार्त्तनिषेधेन श्रौतविधे
र्बाधं ब्रूते, अत्रैव गोहिं
सकस्य वध्यत्वमपि न प्रती
यते नापि तत्र वधावधिदण्ड
मिधानं स्मृतिरूपलभ्यते,,
कथं पुनर्गोहिंसकवध्यत्वे
न गोहिंसायां पापजनक
त्वमनुमिनोति, यदुक्तम्पुनः
पूर्ववाक्यानुमित गोहिंसावि
धेश्चेति तत्त्वतिस्थवीयः न
हि पूर्ववाक्यात्तदनुमानं ब्रा
ह्मणवाक्येन साक्षाद्विहित

त्वात्, यस्तु नःकात्यायन गोभिलसूत्राभ्यां मन्त्रब्राह्मणयोः परस्परविरोधे बाधे विकल्पसमुच्चयौ प्रसक्तिं ब्रूते तदप्यसमञ्जसम् प्रथमतोऽस्माभिर्ऋग्वेदोऽवलोकितस्तत्र प्रथमाध्याये नवममण्डले नवममन्त्रो नास्ति नवमाध्याये प्रथममण्डले नवममन्त्रो नास्ति, अयमङ्कान्येवेदृशान्युद्धरतियानिकुतोपि नोपलभ्यन्ते, अस्तु तथा मन्त्रो न निषेध विधायको येन हिंसा निषेध प्रापकत्वाद्विधिविहितया गोमेधीय हिंसया विकल्पसमुच्चययोः प्रसक्तिप्रयोजकत्वं स्यात्, मन्त्रवेदतो निषेध वेदस्य न सुरं

पिबेत् न कलञ्जं भक्षयेत् ब्राह्मणो न हन्तव्यः इत्यादेः पार्थक्यात्, पञ्च चावेदवाक्यानि विधिमन्त्रनामधेयनिषेधार्थवादभेदात् तत्र मन्त्रास्तु प्रयोगकाले द्रव्यदेवतयोः स्वरूपस्मारका एव न हि तेषां विधायकत्वम् पुनश्चात्र विकल्पसमुच्चययोः प्रसक्त्यभिधानं मीमांसाशास्त्रसंस्कारशून्यत्वव्यञ्जकम्, यत्रैकस्मिन् कर्मण्यनेकद्रव्यविधानं तत्र विकल्पसमुच्चययोः प्रसक्तिस्स्यात् यथा व्रीहिभिर्यजेत यवैर्वेत्यत्र प्रथमप्रयोगे व्रीह्यनुष्ठानेनैव शास्त्रप्रामाण्यस्य स्वार्थानुष्ठापकत्वरूपस्यापरित्यागः।

स्वाधीनानुष्ठापकत्वरूपस्या
प्रामाण्यस्य च स्वीकारो भवति
ततो द्वितीयप्रयोगे यवानुष्ठा
ने तु पूर्वपरित्यक्तस्य यवशा
स्त्रप्रामाण्यस्य स्वीकारः। स्वी
कृतस्य च तदप्रामाण्यस्य परि
त्यागश्चेति यवशास्त्रे चत्वारो
दोषा भवन्ति, तथा प्रथमप्रयो
गे यवानुष्ठाने व्रीहिशास्त्रप्रामा
ण्यस्य स्वाधीनानुष्ठापकत्वल
क्षणस्य परित्यागः। स्वाधीन
नुष्ठापकत्वरूपस्य-चाप्रामा
ण्यस्य स्वीकारः। ततो द्विती
यप्रयोगे व्रीह्यनुष्ठाने तु व्री
हिशास्त्रप्रामाण्यस्य पूर्वपरि
त्यक्तस्य स्वीकारः। स्वीकृत
स्य च तदप्रामाण्यस्य परित्या

गश्चेति, व्रीहिशास्त्रे च त्वारो दोषा भवन्ति, इत्येवं विकल्पोऽष्टदोषदुष्टः। अत्रायं प्रष्टव्योऽपार्थकाभिधायकः। अजं वोक्षाणं वेत्यस्य ब्राह्मणस्य, आरात्ते गोघ्न उत पुरुषघ्न इत्यादिमन्त्रस्य च कथं परस्परं विरोधः कथं वा परस्परं वाऽप्यबाधकभावः। कथं वा भिन्नप्रकरणस्थस्य निषेधाविधायकस्य गोमेधीयहिंसाविधायकेन ब्राह्मणवाक्येन विकल्पसमुच्चययोः प्रसक्तिः। यथा नाथ जतिकु येयजा मह्रं करोति नानुयाजेष्वित्यादौ विकल्पप्रसक्तौ च पर्युदास न जाश्रयणम्,

ननु पदाधिकरणकहोमविधायकविशेषशास्त्रेणाहवनीयाधिकरणकहोमविधायकस्य सामान्यशास्त्रस्य यथा बाधस्तथाऽनुयाजेषु येयजामहमन्त्रप्रतिषेधकरूपविशेषशास्त्रेण यागसामान्ये तन्मन्त्रविधायकस्य सामान्यशास्त्रस्य बाधः कथं न स्वीक्रियत इति चेन्न परस्परानिरपेक्षयोरेव शास्त्रयोर्बाध्यबाधकत्वात्, तथा च शास्त्रयोरेकविषये बाध्यबाधकभावे परस्परनिरपेक्षत्वं हेतुः पदशास्त्रस्य पदे जुहोतीत्यस्य पदाधिकरणकहोमरूपस्यार्थविधानार्थमाहवनीयशास्त्र

निरपेक्षत्वात्, अनुयाजेषु
षेयजामहमन्त्रप्रतिषेधकशा
स्त्रस्य तत्र प्रतिषेध्यमन्त्रप्रस
क्त्यर्थं यजतिसामान्ये तादृशम
न्त्रविधायकसामान्यशास्त्रसा
पेक्ष्यत्वादिति वैषम्यम्, तथा
च भिन्नविषययोर्मन्त्रशालणयो
र्विरोधेन विकल्पसमुच्चयप्र
सक्तिमभिदधानो नजिह्रेति, किं
च मन्त्रे निषेधविधायकत्वम
भ्युपगम्यापि नतेविश्रान्तिः,
निषेधविधायकत्वमपि सामा
न्यतोऽभ्युपगन्तव्यं न तु विशे
षतस्तथा च विशेषवाक्येन नक्र
लणीयेन कथं विरोधः कथं
वा बाध्यबाधकभावो वि
रोधे हि बलीयसा दुर्बलं बा

ध्यते नात्र कश्चिद्विरोधः। तं
थाच कथमुक्तं भावाभाववि
रोधेनासंभवात्सव श्यं युगभे
दव्यवस्थाप्राप्ताविति, तस्मा
न्नत्वदुक्तेकुसृष्टिकल्पनया
युगभेदव्यवस्थापरा शारो
दितस्य तेः सिध्यतीति,
किंच गोर्हिंसकवध्यत्वेनहे
तुना गोर्हिंसानिंद्यपापजन
कत्वं साधयन्नयं प्रष्टव्यः किं
च भो: निरंगिलाभिधायकं। की
टसरीसृपादिहिंसकस्यवध्य
त्वानभिधानात्तद्धिंसानिंद्यपा
पजनकत्वं किं नस्यात्, मन्त्र
प्रतिपाद्ययोर्गोपुरुषयोरतिरि
क्तहिंसकस्य वध्यत्वाभावेन
तद्धिंसापापजनिका नास्तीति

ब्रुवन्नधिकतरमुपहसनीयः स्यात् किंच साक्षाद्विहितस्येतिवद् मासाक्षाद्विहित त्वाद्वाधइत्यप्यवश्यं वद, तस्य प्राप्तो वधस्येति सकृच्यन्तविशेषणत्वात् ॥ पृ० २२ पं० ८। पाक्षिकाभावस्य विकल्पे प्राप्तत्या तदनुवादि युगव्यवस्थायावेदानुकूलत्व सिद्धेरिति ॥ अहो अस्य महामोहो येन मन्त्राद्धिंसाया अभावं पक्षे प्रापयति, नहि तत्र मन्त्रेण हिंसाया निषेधो विधीयते मन्त्रस्याविधायकत्वात् तथा च कथं पाक्षिकाभावः कथं वा तेन विकल्पप्राप्तिर्भिन्नस्य भिन्नप्रकरणस्थत्वात् नहि वि

धिविहितेन सह मन्त्रप्रका
श्यार्थस्य विकल्पसमुच्चयौ
कुत्रचित् तस्मात्पक्षे प्राप
कत्वाभावेपि विकल्पसमुच्च
ययोः प्रसक्तिमभिदधतान
धीतमीमांसाशास्त्रत्वं व्यज्य
ते नहीमानि शास्त्राणि मी
मांसातत्त्वविदोऽनधीत्य बो
धगम्यानि भवन्ति, किंच
पाक्षिकनिषेधस्याप्यनुवा
दित्वं कथं परप्रार्थेदितयुगमे
दव्यवस्थापकस्मृतौ स्वीकृ
तमिति, अनुवादत्वं चात्रम
न्त्रपदव्यपदेश्यवाक्यक
लापस्यपदान्तरेणार्थकथ
नत्वन्तच्चारात्तेमोऽधेउतपु
षघ्न इत्यादिपदानां कथं स्मृ

तिस्यपदे रभ्यालम्भं गवाल
म्भमित्यादि निरर्थक यनम्
तस्मादुक्तिन्न मूल विचारा
रम्भे नार्थं न जिहीर्षि,, पृ०२२
पं० ५। मन्त्र ब्राह्मणयो विरोधे म
न्त्रानुकूल ब्राह्मणस्यांश एव मन्त्र
प्राबल्याधिकरणे निर्णीतत्वेने
ति, अहो अस्यापार्थक मभि
धानं येन च क्षुद्र धूलिप्रक्षेपमि
व करोति, न ह्यस्ति मीमांसा शा
स्त्रे मन्त्र प्राबल्याधिकरणं कुत्र
चित्, प्रत्युतास्मदुक्तस्य मन्त्राणा
मभिधायकत्वस्याधिकरणम
स्ति, तत्र पूर्वपक्ष सूत्रम्, विधि
मन्त्रयोरैक्यार्थ्यमेकशब्द्यात्,
अ०२ पा०१ अधि०६ सूत्रम् २८। अ
स्यार्थः। देवांश्च याभिर्यजते द

इति चेत्तिमन्त्रेषु यजते ददातीति
श्रूयमाणं पदं विधायकं नवेति
संशये पूर्वपक्षमाह विधीति,
विधिमन्त्रयोः। विधिवाक्यमन्त्र
वाक्यघटकाख्यातयोरित्यर्थः
ऐक्यार्थ्यं विधिरूपैकार्थप्रति
पादकत्वम्, एकशब्दात्, ए
कजातीयशब्दात्,, अथ सि
द्धान्तसूत्रम्, अपि वा प्रयोग
सामर्थ्यान्मन्त्रोऽभिधानवाची
स्यात्, सूत्रम् २९ अस्यार्थः। म
न्त्रः। मन्त्रस्याख्यातपदम्, अ
भिधानवाची, एकार्थप्रकाश
नमात्रपरम्, प्रयोगे, अनुष्ठा
ने, क्रियमाणे, तावदर्थस्मरण
मात्रसामर्थ्यात्, तदुक्तं वार्त्ति
के भट्टपादैः। एतामाख्यातशा

ब्दानां न्तु च्छब्दाद्युपबन्धनात्
विधिशक्तिः प्रणश्येत तेसर्वे
ऽत्राभिधायकाः। इति, त्वदुक्त
मन्त्रप्राबल्याधिकरणं चेत्तत्र
स्वं वद किं मुधैव प्रतारयसि
शास्त्रगन्धशून्यान्, किंच म
न्त्रब्राह्मणयोर्विरोध एव न भ
वति कथं पुनर्मन्त्रानुकूलयु
गव्यवस्था स्यात्, अत उच्छि
न्नमूलत्वेऽप्यस्य विचारस्य,
असम्बद्धपदपदार्थमात्रमग्रि
मन्दूषयामः। पृ०२२ पं०८। न्याय
मूलकश्रुतिस्मृतिविरोधे श्रु
तिबलीयस्त्वमिति न्यायविष
याभावेन प्रकृते गवालम्भादि
विधेः प्राबल्यादिति, * अहो
स्खलितः पदे पदे पततीत्याभा

णकमनुसरति, किञ्चौ:श्वोऽ
सौन्यायोऽप्यहिंसया भावेन ग
वालम्भविधेरप्राबल्यमभ्युप
गच्छसि, श्रुतिस्मृतिविरोधे श्रु
तिबलीयस्त्वन्यायस्य तु विषय
एव, नहि कलिकालावच्छेदेन
गवालम्भबोधकश्रुत्यर्थानुष्ठाने
पराशरस्मृतेः प्राबल्यमभ्युपगन्तव्यमस्माः कल्यन्तर्गतजनेषु श्रौतकर्मानुष्ठान
सामर्थ्याभावमालोच्य पराशरेण प्रणयनात्, नह्यर्थिपुसामर्थ्याभावेन श्रुतेः स्मृतितो दौर्बल्यं कल्पयितुं शक्यम्, तथाहि सामर्थ्यञ्च द्विविधं लौकिकं शास्त्रीयं च तत्र शास्त्रीय
सामर्थ्यस्यवसन्नेऽप्यालणनुप

नीत, अस्य प्रक्रमे गुग्राहणो,
गिनमादधीत, इत्यादिरूपस्य पू
र्वेषाभावात्; न तेन विधेर प्राबल्य
म्, लौकिकसामर्थ्यस्य बिद्व
त्व शरीरबलत्व माल मित्रबल
त्व धनबल्वादिरूपस्य कलिज
नेष्वभावात्, न तेनापि विधेर
प्राबल्यम्, एतल्लौकिकसाम
र्थ्याभावे लो च्चेव त्रिकालज्ञैः प
राशरादि महर्षिभि र्विहितस्या
प्यश्वालम्भादेः परिवर्ज्जनम
भिहितम्, अविदूस्य पुत्रक
र्मणो विगुणत्वात् प्रत्युत
पश्वीजादिवधजन्य दोष
भागित्व मेवे त्यभिप्रेत्यस्म तेः
प्रणयना न्नतु मन्त्रप्रा बल्ये हिं
सानिषेधं स्यब्राह्मण विहित

यागे हिंसया विकल्पसमुच्चय
योरारोप्योभयत्रदोषमभिलक्ष्य
तन्निषेधं कलिकालावच्छेदेन
विधिं च कल्पातिरिक्तकालाव
च्छेदेन व्यवस्थापयितुं स्मृतेः
प्रणयनमिति भावः। तस्मान्न
विधेरप्राबल्यमप्रामाण्यं वा
भवितुमर्हति, अन्यथा शास्त्री
यसामर्थ्यस्य शूद्रादिष्वभावे
न विधेरप्राबल्यमप्रामाण्यं च
स्यात्।। पृ०२२ पं०१०। अनुमिता
र्थस्य साक्षाच्छ्रुतिबाधे अनुमि
त्यभाव इति मूलवेदाभावेन मूल
प्रामाण्योच्छेदेनैव स्मृतेरप्रामा
ण्यं चिन्तनेन स्वार्थोपपर्यवसा
यित्वबोधनात्। प्रकृतेऽनुमा
पकमन्त्रस्य स्मृतेश्च कालना

दिप्राबल्यमिति, ॐ अहोद्रष्ट
व्यमस्यासम्बद्धकथनम्। अनु
मीयते मूलवेदोऽनयास्मृत्येति
श्रुत्यानुमानं स्मृतिरभिधीय
ते, अनुमितार्थश्च मूलवेदए
व तस्यानुमितार्थस्य मूलवे-
दस्य साक्षाच्छ्रुतिबाध इति वि
रुद्धार्थः। किंच मूलवेदाभावे
न स्मृतेरप्रामाण्यचिन्ता सिद्धा
पुनश्च मूलप्रामाण्योच्छेदे-
नैवेत्यसम्बद्धम्, मूलनिश्च-
प्रमात्वोच्छित्तिम्वदन्न प्रसक्त
प्रतिषेधमभ्युपगच्छति, मन्त्र
स्यानुमापकत्वं स्मृतेश्च ब्रा
ह्मण श्रुतितः प्राबल्यं पूर्वमे
व निरस्तमित्युपरम्यते,, पृ २२
पं. १७। तथापि मन्त्रप्राबल्याधि

करणस्य श्रुतिप्राबल्याधिक
रणस्य च विरोधे उभयसमुच्च
यासंभवे विकल्पस्यान्दोष
ग्रस्तत्वेनस्वीकर्तुमशक्य
त्वेन श्रुतेर्मन्त्रद्वयस्य च प्राबा
ल्येन कल्पतिरिक्त युगवती
विधिः। निषेधस्य कलिवि
षय इति व्यवस्थितेति॥ ✱
अहो असङ्गतेप्यसङ्गतन्त
त्राप्यसङ्गतमेव मसाङ्गत्य
धारेवारब्धा कुत्रचित्सङ्ग
तम्बद सर्वत्रासम्बद्धकथ
नेनैव पुस्तकपूर्तिं विधास्य
सि, प्रथमतो मन्त्रप्राबल्या
धिकरणस्यैवाभावः। पुनश्च
तेन श्रुतिप्राबल्याधिकरण
स्य विरोधः। तत्राप्युभयोःस

मुच्चयाद्यारोपः। सूत्रसमूहोधि
करणं कथन्तस्य विकल्पसमु
च्चयौ पुनश्च श्रुतेर्मन्त्रद्वयस्य
चेत्यसङ्गतम्, पूर्वं मन्त्रद्वया
भावात्। तस्मादेतच्चतुष्टयमसङ्
तमिति सर्वेन कश्चिदपि मीमां
सातत्त्वविदोऽभ्युपगच्छति,
पृ०२३ पं०४। मन्त्रलिङ्गजन्या
नुमितौ साक्षाच्छ्रुतेर्ब्रीहलकी
याया: सामान्यविषयहिंसा
याः न कथमपि बाधकत्वम्
प्रत्युत विशेषानुमिति बाध्य
त्वमेव, अवच्छेदकावच्छे
देनानुमितौ सामानाधिक
रण्येन बाधज्ञानस्य प्रतिब
न्धकत्वेपि कलिविशेषावच्छि
न्नसाध्यकानुमितौ कल्यति

करणस्य श्रुतिप्राबल्याधिक
रणस्य च विरोधे उभयसमुच्च
यासंभवे विकल्पस्यात्र दोष
ग्रस्तत्वेन स्वीकर्तुमशक्य
त्वेन श्रुतेर्मन्त्रद्वयस्य च प्रामा
ण्येन कल्यतिरिक्तयुगवर्त्ती
विधिः। निषेधश्च कलिवि
षय इति व्यवस्थितेति॥ ❀
अहो असङ्गतेप्यसङ्गतन्त
त्राप्यसङ्गतमेव मसाङ्गं स
धारे वारब्धा कुत्रचित्सङ्ग
तम्बदसर्वत्रासम्बद्धकथ
नेनैव पुस्तकपूर्तिं विधास्य
सि; प्रथमतो मन्त्रप्राबल्या
धिकरणस्यैवाभावः। पुनश्च
तेन श्रुतिप्राबल्याधिकरण
स्य विरोधः। तत्राप्युभयोः स

मुच्चयाद्यारोपः। सूत्रसमूहोधि
करणं कथन्तस्य विकल्पसमु
च्चयौ पुनश्च श्रुतेर्मन्त्रद्वयस्य
चैतत्यसङ्गतम्, पूर्वं मन्त्रद्वया
भावात्। तस्मादेतच्चतुष्यमसङ्ग
तमिति सर्वैनकश्चिदपि मीमां
सातत्त्वविदोऽभ्युपगच्छति,
पृ० २३ पं० ४। मन्त्रलिङ्गजन्या
नुमितौ साक्षाच्छ्रुतेर्बलीय
स्त्वाः सामान्यविषयहिंसा
याः न कथमपि बाधकत्वम्
प्रत्युत विशेषानुमिति बाध्य
त्वमेव, अवच्छेदकावच्छे
देनानुमितौ सामानाधिक
रण्येन बाधज्ञानस्य प्रतिब
न्धकत्वेऽपि कलि विशेषावच्छि
न्नसाध्यकानुमितौ कल्प्यति

रिक्तकालावच्छिन्नसाध्याभा
वप्रकारकबाधरूपस्य कल्प
तिरिक्तकालावच्छिन्नगोमेध
वैदिकविधिपूर्वकयागीयत्व
विशिष्टहिंसाज्ञानस्य वैदिक
त्वप्रकारकस्य कल्पातिरिक्त
कालावच्छिन्नयागीयहिंसा
विशेष्यकस्य वा तदनुमायक
ज्ञानस्य न बाधकत्वम् विभिन्न
कालावच्छिन्नविषयकत्वेन
ग्राह्याभावानवगाहित्वादिति॥
अहो कीदृशोऽयं प्रतारकस्य तन्
त्रः। उक्तिजमूलमपि विचारं
न परित्यजति मत सुतन्त्रारीव॰न
च्छन्नेन कालिदस्तु मितिहृपन्य
स्तायत्रमकस्य लिङ्गत्वमवेत्य॰
अनुमानस्य महाविषयत्वेन

लिङ्गदोषेभ्यो बाधादिभ्यस्त्रस्त
त्वात्, किंच श्रुतिस्मृतिप्रमाण
स्य शाब्दरूपस्यास्तिकमात्रशि
रोधार्यस्यास्माभिरभ्युपेतत्वा
त्किम्पुनरनेकदोषग्रस्तकाप
ङ्ककलङ्कितानुमानप्रदर्शनेन
नापि मन्त्रे गोघ्नपददर्शनाद्
वगोमेधयागीयगोहिंसानिषे
धः प्रतीयते विधीयते वा निषे
धवाचकपदाभावात्, मन्त्र
स्याविधायकत्वाच्च, न वा पू
र्वोक्तरीत्या गोहिंसकवध्य
त्वानुमितगोहिंसानिष्पा
पजनकत्वमात्रं गोमेधीय
हिंसानिषेधकं भवति, अ
स्तु तत्र पापजनकत्वं या गो
पकारकत्वं केन वार्यते, अ

तएवयागोलरं प्रायश्चित्त वि
धानम्, अन्यथा तत्कर्म विपा
कसमयेतत्फलं दुःखमनुभवि
तव्यमेव अतएव चेन्द्रादिवृत्रा
दिकृतदुःखं पुराणेतिहासे श्रूय
यते, किंच पशु च गुरु च पितृ
मातृश्च पति च यज्ञ च पुत्र ब
धूर्त्ता द्यस्य अनेके शब्दाम
न्त्रे षूपलभ्यन्ते विधिकाण्डे
चानेके विधयश्चोपलभ्यन्ते
तथा चापतिघ्नी भवेत्यस्य
विधेर्मन्त्रस्य पतिघ्ना दिप
देन लब्धु मकुलस्य विवप
तिहिंसकबध्यत्वानुमित
पतिहिंसानिकृपापजनक
त्वेनेत्यारम्भ विकल्पसमु
च्चयाचारोप्य विकल्पस्याह्र

दोषदुष्टत्वेन समुच्चयस्यभा
वाभावविरोधेनासंभवाद्व
ष्यं युगभेदव्यवस्थाप्राप्तौक
ल्यतिरिक्तकालावच्छेनाप
तिघ्नीकलिकालावच्छेदेनच
पतिघ्नीस्यादित्यर्थबोधक
स्मृतिःपराशरादिभिः कथंन
प्रणीता, तस्मादेतत्सर्वं शास्त्रा
नवबोधनिबन्धनविडम्बना
मात्रम्, किंच संन्यासधेदेव
रात्सुतधे अश्वधे इत्यादीनां
मन्त्रेऽनुल्लेखात्कथं कलिका
लावच्छेदेन निषेधः। कथमेक
स्यैवगोहिंसानिषेधस्य प्रासि
कप्राप्तिः। अतोऽश्वालम्भादीनां
यथाऽस्य मन्त्रस्य मूलत्वाभावे
पि कलिकालावच्छेदेन निषे

थः कल्पतिरिक्तकालावच्छे
देनच तिथिलक्षैवमखालम
स्यापि कथंनलोक्रियते परा
शरस्तेरविशेषात्, तस्मान्न
गोघादिपदेन मन्त्रस्थेन गोहिं
सानिषेधोविधीयते मन्त्रवेदस्या
ऽविधायकत्वात्, नापिमन्त्राद्
गोहिंसानकर्तव्या गोहिंसक
स्यबधत्वविधानादित्यनुमि
तिः नापि गोहिंसापापजनि
का गोहिंसकस्यबधत्वविधा
नादित्यनुमितिश्च, मन्त्रस्या
विधायकत्वादेवसिद्धेः। हेत्व
सिद्धत्वंच विशिष्टग्रहत्वव्या
पकप्रतिबध्यतानिरूपितप्र
तिबन्धकतावच्छेदकत्वावच्छि
न्नविषयिताकधर्मवत्त्वम्।

असिद्धिसामान्यन्तु पक्षताव
च्छेदकविशिष्टपक्षोद्देश्यकहे
तुतावच्छेदकविशिष्टहेतुप्र
कारकसाध्यतावच्छेदकाव
च्छिन्नविधेयकानुमितित्व
व्यापकप्रतिबध्यतानिरूपि
तप्रतिबन्धकतावच्छेदकस्वा
वच्छिन्नविषयिताकधर्मित्व
वच्छिन्नाविषयकप्रतीतिवि
षयतावच्छेदकप्रकृतसाध्य
व्यापकतावच्छेदकधर्मघटि
तान्यतरत्वमसिद्धत्वम्। किं
च गोहिंसारूपे पक्षे गोहिंस
कवधत्वरूपहेतोरभावात्स्वरू
पासिद्धिश्च तस्य चतुरूपवहति
त्वात्, तत्त्वं च विशिष्टपक्षका वि
शिष्टहेतुग्रहत्वव्यापकप्रतिब

ध्यता निरूपित प्रतिबन्धक
तावच्छेदक त्वावच्छिन्नवि
षयिताकधर्मवत्वम्, अत्रच
गोहिंसात्वावच्छिन्नपक्षकपा
पजनकत्वावच्छिन्नसाध्यका
नुमितित्वावच्छिन्न प्रतिबध्य
तानिरूपितप्रतिबन्धकताव
च्छेदिका विषयिता गोहिंसक
बध्यत्वाभाववती गोहिंसेति
स्वरूपासिद्धिज्ञानीयविषयि
ता तद्रूपावच्छिन्नत्वन्तत्रवर्त्तते
अत्रगोहिंसकस्यबध्यत्वं पुरु
षे नतु गोहिंसारूपे पक्षेतस्य
स्थलमितिस्फुटंस्वरूपासिद्ध
त्वं कथंनास्यबुद्धिगम्यमिति
चिन्त्यम्, अन्यच्च प्रथमतोम
न्त्रलिङ्गजन्यानुमितिरेवा

सिद्धत्पुनश्चतत्र ब्राह्मणीयत्या:सामान्यविषयहिंसायाः कथमपिनबाधकत्वमितिचेत्तिस्वेवीयः। नहिगोमेधीयपुरुषालभेतेति ब्राह्मणीयायाहिंसायाःसामान्यत्वं सम्भवतीति, अहोमन्त्रलिङ्गजन्यांविशेषानुमितिंबदनन्ध्यात्वधिरःकर्षतीतिन्यायमनुसरति पृ०२३पं०७। अवच्छेदकावच्छेदेनानुमितौसामानाधिकरण्येन बाधज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वेपिकलिविशेषावच्छिन्नसाध्यकानुमितौ कलतिरिक्तकालावच्छिन्नसाध्याभावप्रकारकबाधरूपस्य कल्यतिरिक्तकालावच्छिन्न गोमेधवैदि

कविधिपूर्वकयागीयत्वविशि
ष्टहिंसाज्ञानस्य वैदिकत्वप्रका
रकेष्टसाधनत्वज्ञानविषयकल्यतिरिक्तकालाव
न्नयागीयहिंसाविशेष्यक
स्य वा तदुन्नायकज्ञानस्य न
बाधकत्वं विभिन्नकालावच्छि
न्नविषयकत्वेन ग्राह्याभावान
वगाहित्वादिति। अहो कीदृ
शोऽयं विभ्रान्तोयश्चाप्रसक्तप्र
तिषेधं कुरुते न ह्यत्र मन्त्रवा-
क्यादारात्तेगोघ्न इत्यादेः कलि
विशेषावच्छिन्न गोहिंसा निषे
धसाध्यकानुमितिः। यत्र कल
ञ्जं न भक्षयेत् मे धीयोऽज्ञानमा
लभते इत्यादिरूपात्मा तस्य क
ल्यतिरिक्त कालावच्छिन्न गो
हिंसाऽभावाभावस्य हिंसारूप

स्य बाधस्य, कल्यतिरिक्त का
लावच्छिन्न गोमेध वैदिक
विधिपूर्वक यागीयत्व विशि
ष्ट हिंसा ज्ञानस्य वैदिकत्वप्र
कारकस्य कल्यतिरिक्त काल
वच्छिन्न यागीय हिंसा विशे
ष्यकस्य तदुन्नायक ज्ञान
स्य वा विभिन्न कालावच्छिन्न
त्वेन ग्राह्या भावानवगाहित्व
हेतुना न बाधकत्व मित्येवं
प्रतिबन्धकत्वं निषेधयति
यदि मन्त्रवाक्यात्कलिकाल
विशेषावच्छिन्न गोहिंसाऽ
भावसाध्यकानुमितिः स्यात्
तदा भवेदपि ताहशा काल ण
वा कालस्यस्य चतुष्टयविशे
षण विशिष्टस्य गोहिंसारू

पक्षे बाधस्य तज्ज्ञानस्य वा
प्रतिबन्धकत्वशङ्का तथा
पि विभिन्नकालावच्छिन्नत्वे
न साध्याभावानवगाहित्वा
दिति न बाधकत्वमित्येवन्न
निषेधः । न हि तावन्मन्त्रस्य
कलिकालावच्छेदेन हिंसा
निषेधविधायकत्वम्, ना
पि मन्त्रे निषेधः प्रकाशते
निषेधवाचकपदाभावात् ।
नापि बाधस्य विशेषणता च
तुष्टयप्रयोजनम् कथंपु
नर्मन्त्रलिङ्गजन्यानुमि
तिः । यत्र ब्राह्मणवाक्यबो
ध्य हिंसाया बाधकं ब्रवीति
अत्र तदवच्छेदकावच्छेदेना
नुमितौ सामानाधिकरण्ये

नबाधज्ञानस्य सामानाधि
करण्येनानुमितौवाऽवच्छे
दकावच्छेदेनबाधज्ञानस्य
प्रतिबन्धकत्वम् अत्रतूभ
यथाप्यनुमित्यभावः कथं
पुनरत्राप्रसक्तप्रतिषेधंब्रू
ते, तस्मान्मन्त्रलिङ्गजन्यत्वे
नपराशरस्मृतिवाक्यंमेधी
यहिंसाकलौनकर्तव्यामन्त्र
क्तनिषेधादित्यनुमिमानः
कथंनोपहसनीयः स्यात्, न
हिमन्त्रोनिषेधबोधकंपदम्,
नापिमन्त्रस्यविधायकत्वंनि
षेधविधायकवेदस्यमन्त्रवेद
तः पार्थक्यात्, मन्त्रस्यावि
धायकत्वाच्च, नापिमन्त्रोगो
हिंसकस्यवधत्वं तद्वाच-

रूपत्वाभावात्, गोहिंसकस्य वधावच्छिदज्ञानाभिधानाच्च, नापि गोमेधीयहिंसाकल्पति रिक्तकाले कर्तव्या पराशरस्मृत्युक्त निषेधादि स्वानुमितिः स्मृतेरशक्यत्वाभिप्रायेण प्रणयनात्, पृ० २३ पं० १४। तत्कालानवच्छिन्नता हशब्राह्मणकर्तृकावगतकर्तव्यता गोहिंसाविषयकेति ज्ञानस्य च सम्भवः अनुमितनिषेधेन साहिंस्पर्शित्व साक्षान्निषेधेन च विरोधात्केलि विषयकत्वावस्यस्मृत्यावगत कर्तव्यताविषयकज्ञानेनाप्रामाण्य ग्रहादग्रहीताप्रामाण्यकतद्धर्मकालदेशावच्छिन्न प्रतियोगिताका

भाव ज्ञानस्य तत्कर्मदेशकाला
वच्छिन्नप्रकारता कत्वेहिं प्रति
प्रतिबन्धकत्वादिति अहो
प्रकृतिर्निपुणानुस्यजेति किंव
दन्तीं सत्यापयति केचित्स्वस
म्बद्धम्वदन्त्येव न तु लिखन्ति
लेखने त्वस्यैव साहसं न्तु यन्त
त्रापि मुद्राप्य प्रकाशने, किं
म्भोः। कलिकालानवच्छिन्ना
या गोहिंसाविषयका या गोमे
धीयोक्षाणमालभेतेति बाल
णवाक्यावगतकर्त्तव्यताया
ज्ञानस्य कथं आरात्रेगोघ्नइ
ति मन्त्रानुमितनिषेधेन वि
रोधः कथं वाधाहिंस्यादित्य
नेन विरोधः। यद्यनयोर्विरो
धोऽपुपेतस्ते ज्ञालणवाक्ये

न गोमेधीयहिंसाविधायके न तर्हि नवगतवेदवत्मी: नमिलक्षितवेदसम्प्रदायो: कृतगुरुकुलवासो: नासादितब्रह्मसम्पत्तिर्भवानित्येवास्माकं निश्चयः। अत्रापि मन्त्रानुमितनिषेधोक्तिर्निषेधेनञ्च विरोधोक्तिस्त्वत्यन्त शास्त्रसंस्कारशून्यत्वमस्य व्यनक्ति द्वितीयेन मा हिंस्यादित्यनेन च विरोधो घटते निषेधवेदत्वात्तस्येतिलत्वरिक्रियते अत्र विधिनिषेधवाक्ययोर्न कश्चिद्विरोधः उभयोर्भिन्न विषयत्वात्, विरोधे हि बलीयसा दुर्बलं बाध्यते न चेहास्ति कश्चिद्विरोधः। उदाहरणमालभेतेति

वाक्येन हिंसा क्रतूपकारिणी
त्येवबोध्यते नत्वनर्थकरत्वा
भावः। मा हिंस्यादिति निषेधे
न च हिंसा पुरुषानर्थकरीत्ये
वबोध्यते नतु यागानुपकारि
णीति, एवं च भिन्नविषयत्वान्न
विरोध इति भावः। तदुक्तं भट्टपादैः
यो नाम क्रतुमध्यस्थः कलञ्जादी
निभक्षयेद् न क्रतोस्तत्र वैगुण्यं
यथाचोदितसिद्धितः इति, अत्र
भट्टाभिप्रायो भामतीव्याख्यानेक
ल्पतरुकारैरयमभिहितः कल
ञ्जभक्षणादि निषेधानां पुरु
षार्थत्वात्तदतिक्रमे पुरुषस्यै
व प्रत्यवायो न क्रतोर्वैगुण्यं य
था विहितस्य तस्य सिद्धेः। नहि
क्रतुशेषः प्रतिषेधो यतस्तदति

लङ्घनात्कृतो वैगुण्यं स्यादिति
यदि हि गोमेधीयोक्षाणमाल
भेतेति वाक्याद्धिंसानानर्थज
निकेति वाक्यार्थः स्यात्, यदि
वा मा हिंस्यादिति वाक्याद्धिं
सा न गोमेधयागोपकारिकेति
वाक्यार्थः स्यात्तदा भवेदपि त
यो विरोधः। पूर्ववाक्यस्य हिंसा
यागोपकारिकेत्यर्थत्वात्, उ
त्तरस्य च हिंसानर्थजनिकेत्य
र्थत्वाच्च भिन्नविषयत्वे न न
विरोधः। विरोधाभावे न च नवा
ध्यबाधकभावः। तस्मान्न मन्त्र
लिङ्गजन्याऽनुमितिर्नवा गो
हिंसानिषेधस्तस्मात्प्राप्तः। यं
पापिक प्राप्तं पराशरस्मृतिः
कलिकालावच्छेदेन व्यवस्था

प्ययेत्, नापि मन्त्रस्याप्राप्तप्रा
पकत्वम् अप्राप्तप्रापकवेदभा
गस्य विधिलक्षणत्वात्, नाप्य
त्रानुमितयः काश्चित्सर्वैर्वाक्यै
रेव विधीयन्ते, निषिध्यते च मु
धैवायं विभ्रान्तः सर्वतन्त्रविल
क्षणमभिधानो न जिह्रेति नापि
विरमति यावन्न स्वीयं पाण्डि
त्यमपूर्वं व्यनक्ति, इति चिन्त्यम्
यदुक्तं कलिवर्ज्यस्य विषय
ज्ञानेनाप्रामाण्यग्रहादगृही
ताप्रामाण्यकतद्धर्मिकात्तद्
शावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव
ज्ञानस्य तद्धर्मिकात्तद्देशावच्छि
न्नप्रकारताकबुद्धिं प्रति प्रतिब
न्धकत्वादिति, अहो अयमेत
न्न विजानाति यदीमां कलिवि

षयनिषेधव्यवस्थामन्योपिप
स्यति तर्हि कथमुपहासो भवि
ष्यतीति, पराशरस्मृतिदर्शने
नाप्रामाण्यज्ञानं श्रुतौ न भवि
ष्यति त्वत्कृतया ऽप्यसम्बद्धव्य
वस्थया वेदेः प्रामाण्यग्रह इति
तु चित्रम्, इयञ्च व्यवस्था वि
द्वद्भिर्विशेषतो निरीक्षणीया प
श्चात्स्वयमेव ज्ञास्यन्त्ययं के
नोपमेय इति, किंचानेन यस्त
तिबध्यप्रतिबन्धकभावो देश
कालघटितः सत्वाति विरुद्धो
नहि कार्य्यकारणभाव इव प्र
तिबध्यप्रतिबन्धकभावोपि दे
शकालघटितो भवति, एतस्य
तत्त्वमनुन्यायरत्न स्वविद एव

जानन्ति॰ अत्र यद्रहस्यं न तंलि
खामोमदिकस्मि-न्यायलत्ववि
दागच्छे नहिं सामान्यतोऽनुचे
तम्भूतिवध्य प्रतिबन्धकभावं
देशकालादि घटितं न स्वीक
र्वन्ति तिदर्शयामइति, यथा
हि घटाभाववद्भूतलमिति ज्ञान
मगृहीताप्रामाण्यकं घटवद्भू
तलमिति ज्ञानस्य प्रतिबन्धकम्
तद्वत्ताबुद्धिं प्रतितदभाववत्ता
बुद्धेस्तदभावव्याप्यवत्ताबुद्धे
श्च प्रतिबन्धकत्वात् ॥ पृ० २४ पं
२। न हि कालिकाव्याप्यवृत्तिवि
षयक ज्ञानस्य तदभाव विरो
धित्वं ६ स्त्रचरं मूले कपिसंयो
गाभाव ज्ञान सत्वेऽपि संयोगव
त्ताबुद्धेर्दृष्टेउदयादिति ❀❀

अहो द्रव्यत्वाजातिसम्बद्धकथ
नम् यत्पूर्वं निवेशकालघटितप्र
तियोगिसम्बन्धकमावम्बदति
लदुत्तरत्र निषेधयति नहिका
लिकाभाव ग्रहिविषयकज्ञा
नस्य तदभावविरोधित्वंद्दष्ट
चरमिति, अतएवोत्तरमुदाह
रणमपि विषमंमूलेकपिसंयो
गाभावज्ञानसत्वेपि वृक्षेसंयो
गवत्ताबुद्धेरुदयादिति, अत्राय
मस्याभिप्रायः। कालिकालाव
च्छिन्नगोमेधीयहिंसात्वाव
च्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव
ज्ञानस्य परामर्शस्मृतिवाक्य
जन्यस्य कल्पतिरिक्तकाला
वच्छिन्नगोमेधीयहिंसात्वा
वच्छिन्नप्रकारताकबुद्धिं

१८ प्रकृतेऽनुपयोगादसम्बद्धत्वेयम्

श्रुतिवाक्यजन्यां प्रतिप्रतिब
न्धकत्वाभावः विभिन्नकालाव
च्छिन्न भावाभावयोरविरोधा
त, कलिअवस्थानङ्गीकारे
श्रुतिवाक्यस्मृतिवाक्ययोरे
क कालावच्छेदेन द्वयो
र्विरोधेन प्रतिबध्यप्रतिबन्ध
कभावः स्यादित्यभिप्रायः। य
दनेन सामान्यतः प्रतिबध्यप्र
तिबन्धकभावे कालदेशघटि
तत्वमभिमतं तत्तु न्यायतत्वान
भिज्ञत्वमस्य व्यनक्ति दैशिक
कालिकाव्याप्यवृत्तिभावाभा
वयोः प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभा
वे भवेदपि प्रयोजनं नहि सर्व
त्रैतद्धर्मि देशकालावच्छिन्न
प्रतियोगिताकाभावज्ञानं तद्ध

र्मो देशकालावच्छिन्नप्रका
रत्वात्कबुद्धिं प्रतिबन्धकमिति
सामान्यतस्तत्रन्यायविदोऽभ्यु
पगच्छन्ति, अथ व्यवस्थाऽभिप्रा
यं दर्शयामः। अत्र मन्त्रब्राह्मणयो
र्हिंसाभावविधायकत्वमभ्युपग
म्य साक्षीभूतया पराशरस्मृत्या
तयोर्विरोधं परिहर्तुं गोमेधीय
हिंसाऽभावं कलिकालावच्छे
देन व्यवस्थापयति, ब्राह्मणवा
क्यप्राप्तं हिंसाभावं च कल्पति
रिक्तकालावच्छेदेन व्यवस्था
पयति, मन्त्रप्राबल्याधिकर
णन्यायेन च मन्त्रस्य प्राबल्य
मभ्युपगच्छति, अस्य तु मू
लोक्तिः पूर्वमेवास्माभिर्वि
हिता, नहि मन्त्रस्य निषेधवि

धायकत्वमिष्टं येन हिंसाऽभा
वस्य प्राप्तिः स्यात् प्राप्तत्वेन च
श्रुतिविहितया हिंसया विरोध
स्स्यात् विरोधेन च साक्षीभूत
यास्करस्यामन्त्रप्राप्तहिंसानिषे
धस्य पाक्षिकी प्राप्तिः स्यात् प्रा
प्ता च कलिविषयव्यवस्था स्या
त्, नापि मन्त्रे निषेधः प्रतीयते
न वा गोहिंसकवध्यत्वेन मन्त्रा
के हिंसायां पापजनकत्वानु
मानम्, गोहिंसकस्य वधाव
धिदण्डाभिधानाभावात्, न वा
मन्त्रप्राबल्याधिकरणं मीमां
सायां कुत्रचित्, नापि विकल्प
समुच्चययोः प्राप्तिः। न वाऽधि
करणयोरेव विकल्पसमुच्चयो
त्तरसमूहस्यैकत्वयादेवोक्त

स्यैकविषयस्य साधकत्वेनो
रोन्तरसम्बन्धस्यैवाधिक
रणत्वान्कथनयोरेवविकल्प
समुच्चयौ स्याताम्, इत्यादि
सर्वं चूलिकाव्याख्यायितं सिक
तारूपायितं च प्रतिपदं खण्डि
तं चान्यत्र पुनरपेक्ष्येति, पृ० २७
पं० ५। वर्त्तमानादिपर्वतविशे
षकानुमितिहानोदयाञ्चेति[illegible]
अस्य वर्त्तमानादिपर्वतविशेषक
केत्यस्य स्वरूपं निर्दिशति क
तान्,- नापि वर्त्तमानादीत्यस्य
पर्वतादिपदेन समासः। तथा च
वार्त्तमानिकपर्वतविशेषके
तिवाच्यमथवा वर्त्तमानकालि
कादिपर्वतविशेषकेतिवा वा
च्यम्, अनेनासम्बद्धकथनेन

व्याकरणशास्त्रार्थे निरुक्त
म०१ पृ०२४ पं०७। यद्यपि प्रब
स्यातः पूर्वश्रुतेः साक्षात्स्मृति
प्राबल्येन मन्त्रलिङ्गापेक्षया
तदनुमितिबाधकत्वेन च प्रा
बल्येन न कालविलम्बत्वमि
ति स्यात् तथापि श्रुतेः स्म
त्यनुमितिबाधकत्वं न संभव
ति प्रकृते एकस्थानपैकल्येवि
परीतं बलाबलमिति न्यायेन
मन्त्रलिङ्गस्थानपैकत्वे तस्ये
बलवत्वेन व्यवस्थायास्त्वाप्र
मुख कालज्ञानस्य श्रौतत्वका
लविषयत्वेन। वधारणादिति
॥ अहोअथं श्रुतिस्मृत्योर्बला
बल प्रकरणे अनुमितिप्रसङ्ग
मारोप्य स्वस्मिन्ननुमानकौ

शाले व्यञ्जयितुमिच्छति न हि
तन्मानसेनानुमानेन व्यज्यते ना
पि मानसेनतेन विषयसिद्धिः
को वैतद्भूते श्रुतेर्न स्मृत्यनुमि
तिबाधकत्वं यदा हि श्रुतेः स्मृति
बाधकत्वमेव साक्षात्स्वीकुर्व
न्ति मीमांसकादयः किं पुनः
स्मृत्यनुमितिबाधकत्वं श्रुते
र्न संभवतीति किंच बलाबल
त्वमग्रे श्रुतिस्मृत्योर्बाध्यबा
धकत्वं च तदनुमित्योरितितु
चित्रम्, किं च मन्त्रलिङ्गस्य
शब्दसामर्थ्यरूपस्याप्यत्रै
वसार्थक्यं स्वीकरोति यत्र
किंचिदप्यर्थप्रकाशनं ना
स्तीत्यपि चित्रमेव, किंच
प्रमुष्टकालज्ञानस्य श्रोत

स्येति बुधन्न केनोपमेयमिति
न विजानीमः। अत्र प्रथमतः
कालज्ञानं मुख्यं तेन ज्ञान
स्य प्रमोषः संभवति नापि
कालस्य केवलं प्रमोषः संभ
वति श्रुतौ कलि वाचकप
दाभावात् यस्मार्थे मुख्यो
यात् प्रमोषस्तु पूर्व सत्त्वस्यै
व संभवति न ह्ययमसम्बद्धाभि
धान धारातो विरमति यावन्न स्वी
यमनुपबुद्धि प्रभावन्द्योतयति,
प्रत्युतस्मृतौ कलौ पञ्च विवर्ज
येदिति कलौ न पलपेत क मिति
च कालवाचकं कलि पदमस्ति
तदर्थे प्राज्ञो यत्नो किं कसाम
र्थ्ये यो, कुत्रचित् कल्यत्वगतज
ने ध्रुसत्वं चेत्तदा श्रौत कर्मानु

स्थानकाले सुख्यातु न तु स्मार्त्त
भावकालेऽभोतस्याकल्पतिरिक्त
कालस्य प्रमोषः। पृ० २५ पं० ३ शा
खावच्छेदकदेशप्रमोषेशा
खावृत्तिकपिसंयोगज्ञानं न मूले
कपिसंयोगाभावज्ञानविरोधि व
स्तुतोभिन्नदेशत्वादिति अहो
भीदृशोऽनैयायिकः यदीदृशासा
मं न स्यात्तर्हि स्थिदृष्टियोग्यता
कथं निर्धारिता स्यात्, अत्रागा
मवृत्तिभावाभावयोः विरोधेऽ
वच्छेदकभेदस्यैव प्रयोजकत्व
म्, भावाभावयोरेकत्रवृत्त्यपि
मेवावच्छेदकस्वीकारात्, अय
च्च तस्यावच्छेदकदेशस्य प्रमो
षं सर्वानुभवविरुद्धं सर्वतन्त्रविरु
द्धञ्च ब्रूते, असम्बद्धं के चिद्

न्तीवदन्ति न तु लिखन्ति लिख
न्ति चेदज्ञानान्न पुनर्विदुषोऽ
प्रदर्श्य प्रकाशयन्ति प्रकाशि
तश्चेन्न ज्ञायः स नता भवन्ति न
पुनस्तस्य खण्डने प्रयत्ना भवन्ति
ततो ऽयथिकृतदोषलेसभयात्
अस्मिं श्लोके विपरीतम् ७७ पृ० २४
पं० १४। न चादिपदेन रेतआदि
होमस्य तथालं शङ्क्यम्।
अजा वयादि हि रजुषकवादि
तिक्त अहो लोकमतिमनुस
न्धत्ते, यदा हि योऽयं हेतो लु
रामांसरेतो भक्षकादेर्विधायक
त्वादित्यत्र सामादेर्वेतः प
देन ग्रहीतस्योपपत्तिः कथं
भविष्यत्येव किमत्रादिपदग्रा
ह्यस्योपपत्त्या अत्र तु चाण्डा

ली चर्मकारी च मातङ्गी पुल्क
सी तथा श्वपची रजकी चैव व
कैवर्ती विषयोनिकेष्वादीनां
मेतत्स्त्रीणां योनिक्षालित
तोयतर्पणं स्वयोनि जिह्वाप्रक्षे
पपूर्वकमन्त्रजपस्वयोनिर
सलेह्नादेश्चोपपत्तिः का
र्या, किंचाजाबनादिहोमतु
ल्यत्वं स्वधीयेहोमस्य यदभि
दध्यातितदपि हास्यास्पदमे
वन्न हि तत्तुल्यत्वं रेतो होमस्य
तद्विधायकप्रमाणस्यासम्भवति,
वपाहोमस्य विधिविहितत्वात्
अग्निनाहविरितिरित्युक्तो वपा
नां याज्यानुवाक्या, ऋ० का०
१९।६। इति सूत्रात्, अतएव
तत्र प्रामाण्याबोधकत्वेन प्रव

त्यर्थमर्थवादवाक्यं प्रजापति
रात्मनो वपामुदखिददित्युपक्र
म्य । कथमपुनर्विधाभावे
पिविधिविहितेनाज्ञावपाहोमे
नैतेहोमस्य साम्यप्रतिपादय
ति । कथं वा वपाहोमेनेन क्षी
रनीरतर्पणेन तुल्यत्वं वपाहो
निष्कालिततोयतर्पणस्य । क
थं वाऽज्ञावपाहोमस्य तुल्य
त्वं वेपथा योनि निष्क्रप्रश्ने पपू
र्वेकमन्त्रजपस्येत्यभिधत्तेऽ
यमिति ११ पृ० २५ पं० १२ अत्र
वेधाद्वैगण्ये त्वादिमगेषु
लिङ्गहस्तग्रहस्य दुःध्येऽ८
यतिगुरेऽधैस्याधिनाद्ददपु
दावपदानस्य गोपथाद्वैलक्ष
ण्ये दर्शपत्नीवत्प्रकरणे दृ

ति॥ अत्राय मन्त्राभिप्रायः।
प्रथायजुर्वेद मन्त्रे गणानान्त्वे च
प्रकरणे तदन्तर्गत पाठेवत
प्रकरणे च गणानान्त्वा गण
पतिं हवामहे प्रियाणान्त्वा
प्रियपतिं हवामहे निधी
नान्त्वा निधिपतिं हवाम
हे वसो मम आहमजानि गर्भ
धमात्वमजासि गर्भधम्, इति
मन्त्रे हे अश्व गर्भधं गर्भन्धा
ति गर्भधं गर्भधारकं रेतः। अहं
आ अजानि आकृष्य क्षिपामि
अज गतौ क्षेपणे च लोट्रूपं
त्वं च गर्भधं रेतः आ अजासि,
आकृष्य क्षिपसि, अन्या हृद
र्थोप्यश्लील मात्र पदार्थो अ
स्संस्कारायश्रूयते यावत्

पालागत्याः स्त्रसारं प्रतिबा
कलवदश्लील भाषणम्, अ
ज्ञापिरेतौ विषयस्तथास्मा
कं वाभिनामपि तन्नैव भवतु रेतो
होम विषयइति, अत्रोच्यते,
नहिताव ऽोमेरेतसा ऽत्रवि
हितोनवा होमसिद्धस्येरेत
सो भक्षणं विहितम्, यद्धि
लोकसिद्धं गर्भधारकत्वप्र-
योजनन्तदेवास्यसंस्कारस्य
युक्तमिति विवेकउपन्यासः
अत्रयदश्लीलभाषणं न्तं नि
षेद्धुं पारयामः। गर्भधारकत्वं
यद्रेतस उक्तं न्नतु परमात्मनो
ऽन्यस्य याजमानिकरेतसि
पुत्रजनन शक्ति सम्पादनमा
त्रसंस्कारायैवेति, ननु परो

इन्द्रस्य कथं परमात्मस्वरूपत्व
मिति चेत् यज्ञस्य मुख्याङ्गत्वा
त् यज्ञो वै विष्णुरिति श्रुतेः। अत
एव बृहदारण्यके अश्नोति व्या
प्नोति अश्नुः व्याप्नो इत्यर्थो
विष्णुरिति श्रुतेः। अत्र वि
भिरभ्यङ्के च यजमानस्य वि
रञ्जोङ्ग हविष्कारि तस्मात् वि
राड्रूपत्वमिति उक्तमस्य
स्य मेधातिथिः सर्वेष्वपि दे
तः प्राणो यामन्ति वैश्वानर
इत्यादिनेति, अत्र यदन्नीव
भाषणात् तदस्पष्टिक्रकर्तृक
मस्य संस्कारायन्तु पत्नीक
र्तृकं प्रतीयते, उत्तरमन्त्रेत
प्रतिपादनात्, मन्त्रस्य, द
धिक्राव्णो अकारिषं जिष्णो

रश्वस्य वाजिनः सुरभिनो मु
खाकरत् प्रणआयुंषि तारि
षत् ३१। अथमन्त्रार्थः। यतद
धिक्राव्णः अश्वस्य संस्कारार्थ
मश्लीलभाषणमकारिषं अ
कार्षं कृतवन्तः किम्भूतस्य जि
ष्णोः जेतुः। अश्वस्य अश्नस्य
व्यापिनः। वाजिनः अन्नं विद्यते
यस्य तस्य वा। वेगवतः तन्न
सुरभीणि सुगन्धीनि अश्लील
भाषणेन दुर्गन्धीनि मुखानि
भवन्ति पापहेतुत्वात् नोऽस्मा
कं करत् करोतु यज्ञ इति शेषः
आयूंषि ता रिषत् प्रतारिषत्
प्रवर्धयतु चेति। अत्र चैतेरेव
तदृग्ब्राह्मणन्याप्नुहि मन्त्र
स्व शुद्धेः प्रार्थितत्वादिति।

अन्या अपि लोके यावन्तो यो
षितः सर्वास्ता अस्यैव भगव
तः पत्न्यस्तस्यैव स्वरूपा अस्य व्य
ष्टिस्थूलोपाधेः समष्टिस्थूलो
पाधेश्चैक्यात् प्राणिनां कर्म
फलभोगाय सृष्टाः। अत एवात्म
पत्नीकाकंत्वं नः पतिरिति तथा
च कथमेकरूपेस्यैवाहं ऽ
तात्वं कर्मशाड् क्व वा ममार्गि
यावाच्यकर्मितो ल्व मा रे पश्य
सि, अविद्यावस्तुहेवेव वि
भिन्निवे धर्मप रणस्यापि प्रव
र्तमे मा परमात्मरूपे भगव
त्यव्येव रहीमु द्विश्य अभिन्ना
रं शाडः किं षाः पदार्थमात्रस्य
तद्रूपत्वादिति भावः किंचा
श्लीलभाषणेन तुष्ठो स्याद

काश्लीलकर्मणः स्मारकत्वेन
हृद्ये संस्काराधायकत्वमेवा
श्लीलभाषणप्रयोजनम्, तेन
स्मरत्यश्वो भगवान् अमितं म
हिषो पुत्रामिच्छतीति ततश्च तु
त्रोऽस्यां महिष्यां भूयादिसु
पुत्रजन्मनो श्लीलभाषणम्,
न तु सर्वे ग्लौकैर्व श्लीलभा
षणं देवतोपासनादौ च यच्च
र्हेऽस्मिन् चारिकल्पितं स्वीकृ
रणीयं तस्मात् हृद्यं वाक्यामन्त्र
रूपात् श्लीलभाषणमात्रं प्र
काश्यते न तु साक्षात् धारणञ्च श्ली
लकर्मापि मन्त्राणामभिधा
यकत्वात्, नामेतुच्चारणाल्वा
दिकुलाचार्का कुलाचकम्बो
ऽश्लील पांजिह्वया चेन्निले

हनादिकर्मसाक्षादेव विहि
तं रेतो हि मा दिक्षेति॥ पृ० २६ पं०
२। नेष्टा पत्नी तामुद्गात्रा संख्या
पयति प्रजापतिर्ह्येति। कात्या
यन ११।७। सूत्रेण स्फुटमुक्तात्तु
वीर्यदानत्वप्रशंसादिलाभा
दिति॥ अत्र हि प्रजापति ईंहि
रुद्गातरि विहिता तस्मात्प्रजाप
तेः परमात्मनः सकाशात्पत्नी
यजमाननिष्ठस्य वीर्यदात
त्वस्य तदीयरेतसि पुत्रोत्पादन
सामर्थ्यं प्रार्थ्यते याजमानि
कवीर्यमात्रस्य प्राप्तत्वेपि पुत्र
जननसामर्थ्यवैशिष्ट्येन वी
र्यस्याप्राप्तत्वात्तावद्विशेषण
मात्रं प्रजापतेरुद्गातृरूपाद
प्राप्तांशपरिपूर्णार्थं प्रार्थ्यते

नतु साक्षाद्रुक्षातु श्रीलणाहीर्थं
लामभिति मुधैवते व्यामोहः। पृ
० २६ पं० ६। वस्तुतस्तन्नोक्तस्य रे
तो होमादेर्यौगिकत्वस्तत्प्रा
ग्नि होमरूपेति ॐ अहो चकैन
सिद्धान्तयति, हन्तमोः। संप्र
ति योगिजनकर्मणिका ममा
गितिरो भावयितुमिच्छसि, अ
श्वमेधकर्मणि तु न तिरो भूत
न हि तत्रापि विश्रान्तिर्भिन्न
विषयत्वात्। पृ० २६ पं० ८ प्रस्तु
ताग्निर्मूर्धादिवः ककुत्पतिः
पृथिव्या अयं अपां रेतां
सि जिन्वति इति मन्त्रेण सोमे
ऽग्निस्तुतौ विनियुक्तेन रेतः प्री
णनस्य श्रौतत्वादिति, ॐ अ
त्रद्रष्टव्यमस्याज्ञानविजृम्भिता

मिधानम्, अहश्चरे तस्याग्नेर्भा
नं प्रकाशते, अस्यायमर्थः। अय
मग्निः अपांरेतांसि जिन्वति द्युलो
काद्वृष्टिरूपेण पतन्तीनामपांरे
तांसि साराणि व्रीहियवादिरूपे
ण परिणतानि जिन्वति प्रीतिक
र्माप्रीणयति वर्धयतीत्यर्थः।
यद्वा अपांरेतांसि कारणानि जि
न्वति पुष्णाति आहुतिपरिणामे
न वृष्टिं जनयतीत्यर्थः। तेवा एते
आहुतीउत्क्रामत इतिश्रुतेः। किं
भूतोऽग्निः दिवोमूर्धा द्युलोकस्य
शिरः। यथा शिरः शरीरस्योपरि
वर्त्तते तथायमग्निरहनि स्वते
जसा आदित्ये प्रविष्टत्वादादित्य
रूपेण द्युलोकोपरिवर्त्तते, तथा
ककुत्। ककुदिति महन्नामसु प

क्ष्यते अयमेव महानात्मा जगतः
कारणमित्यर्थः। अयमेव पृथि
व्याःपतिः। तापपाकप्रकाशनादि
भिरयमग्निः सर्वाः प्रजा अनुगृ
ह्णात्ययमभिप्रायः। इत्येवमुक्ता
र्थं महीधराचार्यौ व्याख्यात
वन्तौ, अस्मात्वेऽयं विभ्रान्तो य
द्वेलोहोमस्य श्रौतत्त्वमभिदधा
ति, अत्ररेतः पदेन घुलोकात्पत
तां जलानां सारभूतं व्रीहियवा
दिरूपेण परिणतं गृहीतं क्रप्रा
प्तं रेतो होमत्वं अग्नौ प्रक्षिप्ता आ
हुरादित्यमुपतिष्ठते आदित्या
त्पुनर्वृष्टि द्वारा व्रीहियवादिरूपे
ण प्रणमयान्ना रेतः पदेनाभिधी
यते, वामिनां पुनर्यत्र यत्ररेतः
पद तत्र सर्वत्र पुरुषवीर्य्यप्रती

तिजो यते यत्र यत्रच मधुपदं
तत्र सर्वत्र मद्यमेव प्रतीयते, य
त्र च पुरुषव्याघ्रादि पदं तत्र सर्वत्र
नरबलिः प्रतीयते, अहो एषा
मनादिपापवासनाप्राबल्यम्
पृ०२६ पं०१६। महापातकसंस
र्गिपरिग्रहयोग्यत्वादिति हेतुं
विवेचयति अत्रास्य धीत्या प्राय
श्चित्तभिन्नत्वे सतीति विशेषणं दे
यमतो न वैदिकस्मार्त्तकर्मबोध
कशास्त्रे व्यभिचारः। यत्त्वनेन कि
न्तावन्महापातकित्वं यदि सुरा
पत्वाद्यन्यतमत्वम्, तत्रापि किं
सुरात्वं यदि मदशक्तिविशिष्टत्व
मिति चेन्न सुरा तु मलमन्नानां पा
प्मा च मलमुच्यते मनुना सुराशब्द
स्य पिष्टादिनिर्मितगौडीमध्वीपै

स्वत्वत्मवच्छिन्नि धीरणात इत्यु
क्तम्, तत्र मदशक्तिविशिष्टस्य
सुरात्वनिषेधे मनुकृतनिर्वचन
स्याहेतुत्वात् नहि मनुकृतनिर्व
चने मदशक्तिविशिष्टत्वाभावः
सिद्धति येन तत्राव्याप्तिः स्यात्,
नापि तेनासुराव्यवहारविषये नाति
व्याप्तिः स्यात्, नाप्यसम्भवस्त
म्भवः किं चैतत्पूर्वमेवोक्तो लक्षणमत्रा
प्यनिर्वाच्यत्वसिद्धौ किं सुरापः
पेयत्वं सेत्स्यति तर्हि मूत्रानिर्व
चनं स्यात्तेनचात् बौद्धमत अन्यथो
पहासः स्यात्, किमु नर्मधेयथा
वितो मानव वचनस्मृतिर्न तेन
सिद्धिस्ते, इतिभावः। पृ० २७ पं० ६
पुलस्त्यवाक्येन मद्यानि गणय
ति,, पानसं द्राक्ष माधूकं खार्जूरं

तालमैक्षवं मधूत्थं सैरं मारिष्ट
मैरेयं नारिकेरजं समानानि वि
जानीयान्मद्यान्येकादशैवतु, इ
त्येकादशविध वृक्षफलादिरस
विशेषशक्तेस्त्यानस्य ब्राह्मणा
तिरिक्ते न निषेधः इति चेत् अब्रा
ह्मणाभिन्नस्य मद्यपान निषेधा
भावसाधनात्किन्ने प्रयोजनम्, ब्रा
ह्मणस्यैव प्राधान्ये निषेध, स्तत्या
नाच्च ब्रह्मत्व विनाशस्यैवाभिहि
तत्वात्, किंच मद्यसंख्यापकवा
क्यान्येवोक्तानि न तु मद्यनिषे
धकानि पूर्वापरीभूतानीति येषु
मद्यसामान्यस्यैव निषेधः। किंच
यदुक्तं माधूकमैक्षवं सैरं तालं खा
र्जूरं पानसं मधूत्थाञ्चैव माध्वीकं
मैरेयं नारिकेरजं अमेध्यानि द

शैतानिमद्यानिब्राह्मणस्यतु,
इति कूर्महिर्बुध्न्यवाक्यं यादृशम्
कथं वाक्यं च तत्र किं मात्रिका ति
रिक्तं ब्राह्मणेन नवेद्य मासवत्तु
वेयमित्युक्तं तर्हि कथं न तद्वि
भाग्यकैवल्य मुक्तम्, नहि
न्यूनातिरिक्तसंख्या मात्रा। देवपे
या। पेयत्वं लेख्यति, यद्येकादश
विधेपि यत्किंचिदेला लवङ्गा
दि सुगन्धिद्रव्यान्तर योगात्स्व
त्येकस्य है विध्येमद्याविंशति
भेदकनामान्तरं कश्चित्कल्प्ये
त तर्हि किं भेकादशातोतिरिक्ता
निमद्यानि पेयानि स्युः। किंचा
यदुक्तमासवत्तु भूनिख्यातवस्तु
निष्पत्तौ बधिविशेषे (सिर्कि
तिभाषाप्रसिद्धे) रूढं न तु ह

स्यात्स्वत्वमेव, प्राकृतभाषायामा
कारस्यान्तं सिकौरवयोर्भेदवि
लोपयन्नुक्षीयंथौर्थेव्यनकि ॥
पृ० २४ पं० १७ । यद्वाश्वः पिण्डा
नंमग्रंथं संस्कुरासवमिति वा
क्ये भेदेनोपात्तः । अनेन च नि
न्नमात्रं गम्यते यातेमदादि, नाऽ
धिकलमनादेऽस्ता कालकार्य
संभवात् निषेधस्तु ननद्वियामा
त् निन्नमात्रस्य रासीयस्या
दिकीर्तेर्मस्य निषेध कर्त्वामा
वादितिक्ष अत्रहि मद्वासवयो
र्भेदेनोपादानं किमासवस्याम
घत्वप्रयोजकमाहोस्वित्पै घ
त्वप्रयोजकम्, नाद्यः सामा
न्यविशेषयोर्भेदेन कुत्रचि
त्साहचर्यग्रहणे विशेषधर्मा

स्य सामान्यधर्म्मप्रतिक्षेपक
त्वात् यत्रैकस्मिन् धर्म्मिणि विरु
द्धधर्म्मद्वयसमावेशः तत्रैकस्य
धर्म्मस्यान्यधर्म्मप्रतिक्षेपकत्वं द
ष्टम्, नहि सामान्यविशेषधर्म्म
योः कश्चिद्विरोधो येन विशेषध
र्म्मः सामान्यधर्म्मं प्रतिक्षिपेत्
न द्वितीयः। भेदेनोपादानस्य पेय
त्वाप्रयोजकत्वात्, अन्यथा
सुराया अपि मद्यादिभ्यो भेदेनोपाद
नात् तस्या अपि पेयत्वं स्यात् त
था च न सुरां पिबेदिति वेदवच
नं व्याकुप्येत, यच्चोक्तं निन्दामा
त्रं गम्यते निषेधस्तु न तद्विधाना
ल्लाभादिति; तत्तस्य मीमांसाशा
स्त्रसंस्कारशून्यत्वं व्यनक्ति नि
न्दया तु निषेध एव द्योत्यतेऽ

र्थवादत्वात्, अन्यथा निन्दावा
क्यानामानर्थक्यं स्यात्, अतए
व (आम्नायस्य क्रियार्थत्वाद
नर्थक्यमतदर्थानां) इति जैमि
निनाऽर्थवादवाक्यानामान
र्थक्यमाशङ्क्य सिद्धान्तितम्
(विधिना त्वेकवाक्यत्वात्स्तुत्य
र्थत्वेन विधीनां स्युः) इति सोऽरो
दीत् यद्रोदीत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वमि
त्यादीनामर्थवादवाक्यानामा
नर्थक्यं माभूदिति स्तावकत्वेन
सार्थक्यमुक्तम्, किंच निषेध
स्तु न तद्विधानालाभादित्यत्र
किं विहितस्यैव निषेधोऽभिप्रे
तो रागप्राप्तस्य किं नास्ति निषेध
इति, अहो कीदृशोऽस्य संस्का
रो येन निन्दामात्रस्य राक्षसीद

त्वादिकीर्त्तनस्य निषेधकत्वा
भावं स्वीकरोति, अत्र च स्मृति
षु कुत्रचिन्मुख्य निषेधेन वर्गौ
ण निषेधोऽभिप्रेतः कुत्रचिच्च
गौणमुख्यसाधारण्येनैवेति,
अयं च न्यूनाधिक संख्या मात्र
दर्शनेन पेयापेयव्यवस्थां चिकी
र्षति यत्र न्यून संख्यां पश्यति त
त्रावधि स्वयमेव त्वमब्रवीति, पृ०
२८ पं० १७। तुशब्देनावधारणार्थे
नेति ❀ अत्र दशैतानि मद्यानि
ब्राह्मणस्तु, इति ब्राह्मणपदोत्तर
तुशब्दस्याभिन्नक्रमस्तु दर्शवेति
वदताऽनेनैव दर्शितः। अस्माभि
स्त्वत्रैकादशविधमद्यप्रदर्श
नाचदनुसारेणापर्थकत्वं
स्वीकृतम्। तथा च दशापि ब्राह्म

णस्येत्यर्थः अविनात्वयिकमे
कादष्टांगृहीतमिति भावः। पृ० २८
पं० १८। ब्राह्मणादेरप्याशिष्टस्य
निषेधाभावेन राज्ञा पृष्टत्वेमिता
क्षरायां दशविधमद्यपाने ब्राह्म
णस्य निषेध इति ग्रन्थस्यासङ्ग
तेर्विकुमशकात्वात्तु शब्दोऽजा
त्यन्तरनिषेधपर इति व्यतिरस्य
बोध इति ॥ अस्मास्मिस्तु तुश
ब्दोऽप्यर्थेऽभिहितस्तेन स्वै [illegible] को
दशविधमद्यस्यान्यस्मृतिविरो
धपरिहारार्थं समुच्चितत्वात् सर्व
सिकलाकृपायितान्, किं चतुश
ब्दोऽजात्यन्तरनिषेधपर इति को
क्ते मद्यपाने तु ब्राह्मणस्यैव नि
षेधो देवतार्थदानेपितस्यैव नि
षेधस्तथ ग्रन्थो छेवोक्तः। मैत

रस्य स्त्रियादेः कुत्रचित्सत्त्व
स्येषु स्त्रियत्वैस्य योऽपि प्र
तिनिधिविधानान्निषेधोऽभि
प्रेतः। पृ० २५ पं० ११। आसवस्य
रागप्राप्तत्वेऽपि निन्दार्थवाद
त्वेन निश्चितेन वाक्येन न क
थमपि निषेधविधानमिति,
❀ अत्र पुनरपि निन्दार्थवादस
निषेधकं मन्त्रे निन्दार्थवा
दस्यानिषेधकत्वे तस्यैव य
र्थप्रसक्तेरस्माभिर्मीमांसा
शैरपिहितत्वात्, पृ० २५ पं०
१४। अरिष्टपाकस्य चिकित्सा
प्रसिद्धः औषधिवाद्यसम्पा
दितजलविशेषे (अर्कें इति भा
षाप्रसिद्धे पारावत इति व्यवह
ते) प्रस्रुतस्य च पञ्चाशि

ष्टा प्रतिषिद्धं नैव तद्दोषाय भ
वतिनाम्मुद्दयायेति भाष्यो क्तं
शैत्यान पानद्वारा पुण्यपापा
देर्जनकत्व मितिश्चेअत्ना रिष्टा
दिमद्यविशेषेप्यस्य जलभ्रान्ति
रेवद्रवद्व्यमस्य संस्कार प्राबल्य
म्, किंभोः मूत्रे जलविशेषत्व
महो किन्नेन सेत्स्यति, किं
चारिष्टशब्दः (अर्क) इति भाषाप्र
सिद्धे शराव इति व्यवहृते शक्तः
अत्रापामरप्रसिद्धः शराबार्क
योर्भेदः। अतो भाषायामपि न
धूर्त्ततामपरित्यजसि, यत आ
बालयवन प्रसिद्धं शराबार्क
योर्भेदं विलोपयसि, किंचारि
ष्टा प्रतिषिद्धमित्यत्रन सद्धये
न किं चोत्यते, अरिष्टाप्रति

बिम्बं न देशाय किन्तु शिरःप्र
तिबिम्बं देशाय भवतीत्यर्थः स्यात्
तथा चोपहसनीय एव, अतो
ऽत्र शिरःप्रतिबिम्बमिति भाष्य
पाठः प्रतिभाति अथवा शिरः
प्रतिबिम्बमिति वा नतूभयत्र न
ञ् घटितः साधुरथवाऽऽङ्घ
टितोऽपरत्र वाच्यः। अथास्तु
किमेतेन भाष्येणाते सिद्धम्
नह्यनेन भाष्येण शरावार्कयो
र्भेदः सिध्यति ११ पृ० २९ पं०
१८। तान्त्रिकमन्त्रसंस्कृतस्य
तुमहापुण्यजनकत्वमित्र
किमधिकम्वाच्यमिति ॥ अ
त्र किं प्रमाणं मन्त्रसंस्कृतं पेयमि
ति न हि कुत्रचित्स्मृतिष्वेतदुप
लभ्यते मन्त्रसंस्कृतम्पेयमिति

संस्कारोपि यस्य कस्यैकस्येत्यवि
शिनस्तमेवसंस्करिष्यति, अन्य
थावैदिकमन्त्रैः सामाजिकैः सं
स्कृतोयवनामेषाम कथं न पा
ऽःक्षेपास्तुः । तस्मान्न यवनस्य सं
स्कृतेरेवास्मन्मता, , किंच ब्रा
ह्मणकन्यैकं देवतो हि स्पकं मद्य
दानं स्पर्शपानमपि स्मृतिश्रुत्यो
श्च कलि निषिद्धम्, तथा चोक्तं
मार्कण्डेय पुराणे सूर्यंप्रति वा
क्यम्, कलि मांसादिभूजे यं वि
प्रवर्ज्ञाम येरिता तेषां कलिस्तु
रामां सैर्नैकाचूआन्नय कचि
त, कालिकापुराणे च, ब्राह्म
णक्षत्त्रसुःदत्वा ब्राह्मण्यादेव
हीयते, तथा च श्रीकर्मे, ,
नदद्या ब्राह्मणोमद्यं महादे

ऐ कथंचन वामकामो ब्राह्मणोपि मद्यं मांसं न भक्षयेत्, अग्रे प्रति निषिध्यकारणं बहुभिर्वचनैः कथम् किं बहुधिमन्नस्यानान्तरमेवोक्तमनुसारे एतद्द्वयं प्युद्रस्येवेति, वामकामो ब्राह्मणोपि, अस्यार्थः। चाण्डालस्यादिस्त्री लोभाद्वा मं कामयमानोपि मद्यादिनादिवेत् अपिनाच प्रथमतो ब्राह्मणस्य वामोनास्ति, अस्तु तथापि मद्यं मांसं न भक्षयेदिति, कथं पुनस्त्वं मुधैव विभ्रान्तो येन मन्त्र संस्कृतस्य मद्यस्य पेयत्वं ब्रवीषि, अन्यत्राप्युक्तम्, विप्राःक्षोणीभुजस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवैरिति अज वर्ण चतुष्टये प्र

त्यैकं सोज्यम्, विप्राः क्षीरेणाप्स
त्रिया आज्येन वैश्या मधुना शूद्रा
आसवेन अथ चनीलतन्त्रे सप्तम
पटले, यत्रासवमवश्यन्तु ब्राह्म
णस्य विशेषतः। तत्र गुडार्द्रकन्द
घातकं वा गुडमिश्रितम्, अतो
न ब्राह्मणस्य कुत्रचित्सुरासवा
रिष्टादि मद्यविशेषाणां देवता
यै दानमुक्तम्, तन्त्रसारे विप्रा
ह्मणकर्त्तृक न्देवतोद्देश्यकं सुरा
सवादिदानं निषिद्धम्, ।यद्धि
पुराणेतिहास धर्म्मशास्त्रतन्त्र
ग्रन्थेष्वपि सुरासवादिदानमपि
देवतायै ब्राह्मणकर्त्तृकं निषि
द्धन्तत्त्वयाकुत्रत्न दृष्टं ब्रह्म
स्वविनाशकं सुरादानम्॥ कु
लार्णवे श्यामारहस्ये च केन चि

द्वैतैन प्रक्षिप्तं ब्राह्मणकर्तृकं सु
रादानवाक्यं सर्वोक्तिकतन्त्रवि
रुद्धत्वात्, ये तु शास्त्रसंस्कारमू
न्या विधिना ब्राह्मणो मद्यं पिबेद्
न्न दोष इति वदन्ति तैः स्वीयं मौ
र्ख्यं व्यक्तीकृतं पूर्वोक्तैः पुराणे
तिहासतन्त्रवचनैर्ब्राह्मणक
र्तृकविधेरेवाभावात्,, पृ० ३०
पं० ८। यागीयपानातिरिक्तस्व
निवेशस्यावश्यकत्वादिति ❀
अत्रापि यागीयपदस्य वैदि
ककर्मपरत्वात्तद्दृश्यं वाम
कौलादिकर्मणः श्रौतस्मार्तत्व
माभावादिति मेरुतन्त्रादेव। स्यसा
धितत्वात् तत्र वैदिकी पौराणि
की स्मार्त्ती तान्त्रिकीति चतुर्वि
धोपासनाविभजनात्, अत्रैस्म

त्रीपदाच्छाण्डिल्यभक्तिसूत्री
योपासनाग्राह्यातान्त्रिकीपद
च्चनारदपञ्चरात्राद्यार्षतन्त्रप्र
तिपाद्याग्राह्या ततश्चनस्मर्तिप
दव्यपदेश्यानिवामकौलादित
न्त्राणि तद्विहितञ्चनानुष्ठेयम
ग्राह्यमिति तस्मात्त्यजेद्दूरी पापवा
सनां भजशिष्टाचारं चरश्रौतस्मा
र्त्तधर्म्ममानिधाः वाममार्गपदं
माश्रयस्वकुम्भीपाकापदकं वा
मंत्रिदुर्जनगर्हितं मद्यचाण्डा
लादीन्सिद्धयर्थं प्रणीतमिति
पृ० २० पं० १६। नित्यमुक्तत्वेन मु
क्तवन्नपि न भणतीति मुमुक्षु
जीवन्मुक्तता दृशावस्था विशे
षस्यत्वेन स्तुतिनिन्दाभयादि
नाऽप्रवर्त्तमानानां गृहस्थि

नाभित्यादिकं सम्प्रति जीवन्मु
क्तानां स्थितप्रज्ञानामाचारे ना
माचारमपन्हुते तेषां यथेष्टा
चरणत्वात् पूर्वं योगिजनकर्म
णि तु नापन्हुतः ॥ अत्र हि जीव
न्मुक्तेषु विद्वत्सु प्रतिषेधशास्त्रं
निवृत्तं चेत्तर्हि विधिशास्त्रमपि
निवृत्तमेव विधिनिषेधमयशा
स्त्राणां विद्यावद्विषयाण्येव व-
स्तीकृतानि देहेन्द्रियादिष्वहं ममाभि
मानरहितस्य प्रमातृत्वानुपप
त्तेः प्रमाणप्रवृत्त्यनुपपत्तेः। नहि
इन्द्रियाण्युपादाय प्रत्यक्षादि व्य
वहारः संभवति, न चाधिष्ठानम
न्तरेणेन्द्रियाणां व्यवहारः संभव
ति, न चानध्यस्तात्मभावेन देहेन कै
श्चिद्व्याप्रियते, न चैतस्मिन् सर्वे

स्मिन्नसति असङ्गस्यात्मनः प्रमा
तृत्वमनुपपद्यते, न च प्रमातृत्व
मन्तरेण प्रमाणप्रवृत्तिरस्ति तस्मा
दविद्यावद्विषयाण्येव प्रत्यक्षा
दीनि विधिनिषेधमयशास्त्राणि
चेत्युत्तरमीमांसाभाष्ये सविस्तर
मुपपादितं शङ्करभगवत्पादैः। अ
तो मन्त्रसामर्थ्यप्रभावेण चापेक्षा
भावेन नित्यमुक्तत्वेनेति वदतो धा
वतश्च ते नात्रापि विश्रान्तिलाभ
इति॥ पृ० ३१ पं० ५। अदेवो देवत्वक
लिधिवाक्यघटितत्वं चोपाधिरत्रे
ति व्याप्यत्वासिद्धिश्च प्रायश्चि
त्तिभिन्नमहापातकसंसर्गिप
रिग्रहयोग्यत्वहेतुकानुमाने इ
ति वोध्यमिति। अत्र प्रष्टव्योऽ
प्यनुमानकुशलः कृपामयमु

पाधिः साध्याव्यापकत्वात्प्रमा
णत्वाभावश्च शाक्यबुद्धादितन्त्रे
षु तत्रादेवोद्देश्यकविधिघटि
तत्वं नास्तितत्रापिदेवोद्देश्य
त्वन्त्वस्यैव ब्राह्मणकर्तृकत्वं
नास्तीतित्वन्यहृदयेचस्मद्वाद
योनास्तिकाश्च पतिताब्राह्मण
बुवाश्चाधिकारिणस्तेऽपियां
कांचिद्देवतामुद्दिश्यैवतत्कर्म
कुर्वन्तीति, व्याप्यत्वासिद्धिश्च
व्याप्येव्याप्यतावच्छेदकस्या
भावः। अत्रच मद्यपानकर्तृषु
व्याप्यतावच्छेदकस्यमहापात
कित्वस्यस्यापितत्वान्न तद्भा
वःसाधयितुं शक्यः। मन्त्रसंस्कृ
तस्यापितस्यमद्यस्य ब्राह्मणे
नापेयत्वस्यसाधित्वादिति

न व्याप्यत्वासिद्धिदोषः पदमा
दधाति, पृ० ३१ पं० ७। विद्याया परि
गृहीतत्वादिति स्वरूपासिद्धो
हेतुरिति, अत्र कथं स्वरूपा
सिद्धत्वं नहि कुण्डलीयोगष
ट्चक्रभेदनस्य वामेष्युक्तस्य
नतस्यैकदेशमात्रस्य शङ्करादि
शिष्टजनगृहीतत्वेन स्वरूपा
सिद्धत्वं तावन्मात्रस्य शाक्य
बुद्धादिशास्त्रसाधारण्यात्,
पृ० ३१ पं० १५ अस्ति चेच्छङ्करा
दिभिस्तद्रहस्योपपादितत्वा
त्स्वरूपासिद्धो हेतुरिति, शि
ष्टत्वं वैदिकत्वव्याप्यं न वेति
अत्र विधिकोटिरेवास्तिक
मात्रसंमता तत्र योदोषः शङ्क
रादिपरिग्रहरूपः स चाग्रे नहि

तपूर्वमेव समाहितो येन स्वरूपा
सिद्ध्यभावः स्यादिति । पृ० ३२ पं० १
अथ शिष्टेतरग्राह्यत्वं न तद्धर्मं इति
चेत्पुराणादन्नभौ वेण व्यभिचार
इति केचिदाहुरिति ॥ अहोपदे
पदेऽसङ्गतमद्भुतेति घोरागिकं
कम्मिकथं शिष्टेतरग्राह्यं कथंना
तं गच्छन्तः शिष्टेतराभवेयुस्तत
कर्मणोपिस्मार्तत्वात् । किंच
शिष्टेतरत्वं च शिष्टनिष्ठप्रतियो
गिताकभेदवत्त्वं चेद् घटशिष्टो
भयं नेत्यस्य घटविशिष्टशिष्टोने
त्यस्य चोभयभेदस्य विशिष्टभेद
स्य च शिष्टनिष्ठप्रतियोगिता
कत्वान्नोऽस्य शिष्टेपि सत्वान्न
ग्राह्यस्यापि शिष्टेतरग्राह्यत्वं
स्यात् । यद्यपि भेदीयप्रतियो

नव्याप्यत्वासिद्धिदोषः पदमा
दधाति, पृ० ३१ पं० ७। शिष्टापरि
गृहीतत्वादिति स्वरूपासिद्धो
हेतुरिति, अत्र कथं स्वरूपा
सिद्धत्वं नहि कुण्डलीयोगमा
र्ग चक्रभेदनस्य वामे प्रयुक्तस्य
नतस्यैकदेशमात्रस्य शाक्तादि
शिष्टजनगृहीतत्वेन स्वरूपा
सिद्धत्वं तावन्मात्रस्य शाक्य
बुद्धादिशास्त्रसाधारण्यात्,
पृ० ३१ पं० १५ अस्ति चेच्छंकरा
दिभिस्तद्गृहस्योपपादितत्वा
त्स्वरूपासिद्धो हेतुरिति, शि
ष्टत्वं वैदिकत्वव्याप्यं नवेति च
अत्र विधिकोटिरेवास्तिक
मात्रसंमता तत्र योदोषः शाक्त
रादिपरिग्रहरूपः स चास्मन्नहि

तपूर्वमेवसमाहितोयेनस्वरूपा
सिद्ध्यभावः स्यादिति, पृ० ३२ पं० १
अथशिष्टेतरग्राहकत्वं न स्यादिति
चेत्पुराणाद्यन्तर्भावेण व्यभिचार
इतिकेचिदाहुरिति ॥ अहोपदे
पदेऽसकृतमन्वीतिधौराणिकं
कर्म्मिकथं शिष्टेतरग्राहकत्वं कथंना
तंग्रहणतः शिष्टेतराभवेयुस्तत्
कर्मिणोपि स्मार्तत्वात्, किंच
शिष्टेतरत्वंच शिष्टनिष्ठप्रतियो
गिताकभेदवत्वं चेद् घटशिष्टो
भयंनेकस्य घटशिष्टशिष्टोने
त्यस्य चोभयभेदस्य विशिष्टभेद
स्य च शिष्टनिष्ठप्रतियोगिता
कत्वान्नपोरूषशिष्टेपिसत्वान्
ग्राहकस्यापि शिष्टेतरग्राहकत्वं
स्यात्, यद्यपि भेदोपप्रतियो

गितायां विशिष्टव्यासज्यवृत्ति
धर्मावच्छिन्नत्वनिवेशात्तद्वा
रणन्तथायोगेऽपि शिष्टे दासि
णात्व शिष्टो नेति भेदसत्वात्तद्वा
रस्यापि शिष्टेतरत्वादित्वम्, शि
ष्टत्वत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक
पर्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकरूप
वृत्तियोगिताकभेदवत्वविवक्ष
णेन दोषाभावः। शिष्टत्वेतरध
र्मानवच्छिन्नप्रतियोगिता
कभेदवत्वविवक्षणे चोभयभे
दविशिष्टभेदमादाय दोषस्तुन
भवति तथाप्युभयस्यादोषस्य
तत् शिष्टत्वेऽपि घटशिष्टत्वोभयं
नेति भेदस्य सत्वात्, शिष्टत्वत्वे
तरधर्मानवच्छिन्नप्रतियोगि
ताकभेदविवक्षणे च शिष्टत्वत्वे

पि घटशिष्टत्वत्वं नेति भेदस्तत्वा
त्, तद्वारणाय शिष्टत्वत्वेतर
धर्मानवच्छिन्न प्रतियोगिता
कभेदविवक्षणे च । शिष्टत्वत्वे
ऽप्युभयभेदः । एवमग्रेपीत्यनव
स्थेति पण्डितरूपवेदनीया ।। पृ॰
३२ पं॰ २।९ कं दक्षिणं वामञ्चान्य
दिति ।। अत्र दक्षिणत्वं च वामापे
क्षया सोऽयं भेदो वाममार्गीयग्र
न्थेष्वेव न तु स्मार्त्तवैदिकसम्प्रदा
ये वामदक्षिणभेदः । अस्मन्मते तु
प्रोक्तस्मार्त्तभेदेन कर्मणो द्वैवि
ध्यमुक्तम्, तथा च वामत्वदक्षि
णत्वविचारस्तु निर्मूल एव किन्तु
न दक्षिणत्वमिति ।। पृ॰ ३२ पं॰ ३।
तन्त्रत्वावच्छेदेनेति ।। अहो कर्णी
स्पर्शी कष्टिचालनादितमभिधा

नमस्य, नह्यन्यतन्त्रत्वावच्छेदेना
प्रामाण्यसाधनं नवा दक्षिणतन्त्र
त्वावच्छेदेन प्रामाण्यसाधनं कि
न्तु वामभुक् तन्त्रत्वावच्छेदेनाप्रा
माण्यसाधनं कथमनुमस्तन्त्रत्वा
वच्छेदेनानुमितौ भागासिद्धत्वे
पि सामानाधिकरण्येनानुमितौ ना
सिद्धिरिति ब्रवीति, किंच तन्त्रं ध
र्मे न प्रमाणं शिष्टापरिगृहीतत्वा
दिति स्वयमेवासकृत् प्रतिज्ञाय
न तद्दूषणेन वामे प्रामाण्यं से
त्स्यति नापि कुत्रचित्पुराणेतिहा
सधर्मशास्त्रेषु वाममार्गीयिक
र्मकारिण अमुकं फलं लभन्त
इत्युक्तम्, तस्माद्वामतन्त्रत्वाव
च्छेदेनैव पक्षत्वमनुमितिर्विप
क्षतावच्छेदकावच्छेदेनैवेति,,

पृ० ३२ पं० ७। वामत्वलक्षण प्रस्ता
वेत्तीय हेतूक्त वामत्व विशिष्ट
दक्षिणादि भिन्नस्य पक्षत्वे आ
श्रयासिद्धो हेतुरिति कि अत्र द्र
ष्टव्योऽयमस्यलक्षण प्रस्तावे
वामस्य, पूर्वमनेन वामं शोभन
दुष्टयोरिति कोषात् शोभनमार्गी
यत्वार्थोऽभिप्रेतः। अस्माभिस्तु
द्वितीयमर्थमादाय दुष्टमार्गीय
त्वार्थोऽभिप्रेतः। तत्रापि वाम
त्व विशिष्टवामस्यैव पक्षत्वं न
तु वामत्वविशिष्टदक्षिणभिन्न
स्य पक्षत्वं प्रयोजनाभावात्
क्व पुनराश्रयासिद्धिरिति, अ
स्य मुखविवरात् किंचिन्निर्ग[illegible]
ति न पुनरयमालोचयति किं
मे मुखविवरान्निर्गलितमिति

तेन केनोपमेयमस्य मुखमिति निविजानीमः। पृ० ३२ पं० २४। वस्तुतो वामत्वदक्षिणत्वभेदाभावेन तन्निवेशे तन्नेषु पक्षतावच्छेदकासिद्धिरेवेति हन्त भोः यदि दक्षिणभिन्नत्वविशिष्टवामत्वस्य पक्षतावच्छेदकत्वं स्यात्तर्हि भवेदपि पक्षतावच्छेदकासिद्धिस्तदेव तु नकेनाप्यभिमतं कथं पुनः पक्षतावच्छेदकासिद्धिमप्रसञ्जयसि, आस्तिकमात्रसंमतं कर्मश्रौतस्मार्त्तञ्च अधोर्ध्वाम्नायदक्षिणाम्नायादयः पश्चिमाम्नायाः वामप्रतिपाद्या एव नान्यत्रेत्यप्रस्तुतविचार एवेति, वस्तुतो वामत्वं प्रतिकूलत्वं दक्षिणत्वञ्चानुकूल

त्वम्, अयंपुरुषोमेवा मोयंचद
सिणाइतिसार्वजनीन व्यवहा
रात्, कथमत्यन्तविरुद्धयोर
भेदंब्रूते वस्तुतोवामत्वदक्षिण
त्वयोर्भेदाभावेनेति, तथाचैत
दादयाग्निमंशाऽःकासमाधा
नमप्युच्छिन्नमूलमेवेति,
पृ०३३पं०१६। वस्तुतस्संन्यासस्य
नकलावस्थात्यन्तनिषेधआ
तुराद्यवस्थायामारूढपतित
त्वादिसंभावनाऽभावेनतादृ
शावस्थाविशेषार्थत्वेनचरि
तार्थत्वादिति॥ अत्रागतोऽ
स्त्यपिच्छद्कुल्यां प्रभात इ
तिन्यायमनुसरन् यथाहिक
लिकालावच्छेदेनारूढपति
तत्वभीत्यास्मृतिःसंन्यासंनि

बोधयति कल्पतिरिक्तकाला
वच्छेदेनेवाल्छयति तत्राभावनि
श्चयेच कलिकालावच्छेदेना
पि विधत्ते श्रुतिः स्मृतिश्चे
ति तथैवाश्वालम्भगवाल
म्भादिष्वपीयमेवरीतिरव
तेथा नंगवालम्भादेरत्यन्त
निषेधः किंतु कर्मवैगुण्य
भीत्या पश्वादिवध जन्यपा
पभीत्या चेतिनात्यन्तनिषे
धः। यत्र चानिषेधकारणं ना
स्तितत्र न निषेध इति भावः
पृ० ३४ पं० ८। स्मृतिभिन्नत्व
समानाधिकरणवेदभिन्न
त्वं च भवदभिमतहेतोः प
क्षेऽभ्युपगमे उपाधिः स्मृति
त्वस्यपुरा तत्रपुराणादौ

पपादितत्वेन शाक्यादिग्रन्थे
साध्यव्यापकत्वात् पक्षे साधसा
धनाव्यापकत्वमेव वर्त्तते वोप
पादितत्वाच्चेति । अत्र स्मृति
भिन्नत्ववेदभिन्नत्वयोः सामाना
धिकरण्यं किं सामनैयत्यरूपम्
आहोस्वित्, एकाधिकाधिक
रणवृत्तित्वरूपम्, नाद्यः पक्षः
स्मृतिभिन्नत्वस्य वेदे सत्त्वात् तत्र
वेदभिन्नत्वाभावात् भेदस्य प्र
तियोगितावच्छेदकेन सह विरो
धात्, यथा घट भेद प्रतियोगि
तावच्छेदकं घटत्वं घटे वर्त्तते ल
त्र घटभेदाभावः स्वस्मिन्स्वभेदान
ङ्गीकारात्, तथा स्मृतिभिन्नत्वं
च वेदे तत्र वेदभिन्नत्वाभाव इति
भावः । न द्वितीयः । शिष्टापरिग

हीतत्वरूपहेतोर्विमतत्वावच्छे
देन व्यापकत्वात् वाममेचानुम
वत्वस्यस्यापितत्वात्, तत्रस्मृ
तिभिन्नत्वाधिकरणवृत्तिवेद
भिन्नत्वस्यसत्वात्, सामान्य
तःस्मरणंस्मृतिरित्यभ्युपगमे
तु शाक्यबुद्धस्मृतित्वावच्छेदेन
स्मृतिभिन्नत्वसमानाधिक
रणवेदभिन्नत्वाभावात्प्रमाण
त्वाभावरूपसाध्याव्यापकत्वा
च्च किंच स्वकल्पितानुमानदूषणे
नहि वामप्रामाण्यमभ्यनुज्ञातं
स्यात्, पृ० ३४ पं० ५। एवंपक्षता
वच्छेदकं दक्षिणातिरिक्तत्वंच
सन्दिग्धोपाधिरिति, अत्रहि
पक्षतावच्छेदकस्योपाधित्वे
यत्रसाध्यं तत्रपक्षतावच्छेदकं

यत्रसाधनं दृष्टान्ते तत्र न पक्ष-
तावच्छेदक मित्यनुमानमात्रो
च्छेदापत्तेः। किंच दक्षिणातिरि
क्तत्वं शाक्यादिग्रन्थे शिष्टापरि
गृहीतत्वस्य साधनस्य व्याप
कमिति नोपाधिः। अत्रोपाधि
मुद्भावयन् के नोपमेय इति न
विजानीमः। पृ० ३६ पं० १२। शि
ष्टपरिगृहीतमयोग्यत्वादित्य
त्र मो हेतुरत्र किमिदमयोग्यत्वं
शिष्टपरिगृहीतावच्छेदकध
र्म्मशून्यत्वं चेदुक्तरीत्या स्वरू
पासिद्धिरिति। अहो अयोग्य
त्वस्य निर्वचने कोऽयं वि
भ्रान्तः। किं भोः। अयोग्यत्वस्य
शिष्टपरिगृहीततावच्छेदक
धर्म्मशून्यत्वे शिष्टपरिगृही

तु मिति तिनुमनन्तस्यैवै यर्थ्यम
तथाच योग्यत्वं योनि क्षालित
जलतर्पणाद्यभाववत्त्वन्तदभा
वश्चायोग्यत्वं तच्च योनिक्षा
लितजलतर्पणवत्त्व योनिले
हनवत्त्वाद्यन्यतमत्वम् । पृ०
३६ पं० १६ । नहि तान्त्रिकमतम
नुतिष्ठतां कापि पापं स्यादिति
अहोअस्य कीदृशः संस्कारः
यदहि ज्योतिष्टोमादिवैदिक
कर्म्मानुतिष्ठतामपि पशुवी
जादिवधजन्यपापभाक्त्वस
द्भावः स्वीकृतः । अत एव पापफ
लं तत्राप्यसुरक्तं भयादिकन्ते
षां नां स्वर्गिणामपि समर्थ्यते,
किम्पुनर्वीभावानुतिष्ठतां का
पि पापं न स्यादित्यभिमन्यते·

पृ०३८ पं०४। चरमत्वंचलादृष्टात
द्वाभक्तेरेव जन्मजन्मान्तरे मि
लयत्वेन स्वावच्छिन्नभक्तिवि
षयेतरविषयकभक्तिप्राग
भावानवच्छेदकत्वस्य सर्वज
न्मसु सत्वेनोपपाद्यमिति ॐ
अत्राशुद्धो। यं चरमत्वपरिष्का
रः। चरमत्वं च जन्म निस्वस
जातीयशरीरप्रागभावान
धिकरणत्वमेव सर्वसंमतम्
पूर्वत्र स्वं जन्मान्तरं — तदवच्छि
न्नात्माभक्तिः — तद्विषयो देव
ता — तदितरविषयो यस्याभ
क्तेः — तत्प्रागभावानवच्छेद
कत्वं यदुत्तरं भक्तिर्नोत्पद्यते
तस्मिञ्छरीरे यथा तथैवा
वच्छेदकत्वाभावस्य घटपटादि

सुसर्वज्ञविप्रोमादस्तु दोऽपमि
ति, पृ० ३५ पं० ५। तुरारिरुतिरि
क्तमथ्ययोरेव ब्राह्मणानां सु
रायाश्चैवर्णिकानां वेदस्मृत्या
दिविहितयागः तिरिक्तकाला
वच्छेदेनपापबोधनात्, एवम
भक्ष्यत्वविधि स्वस्य मांसादेरदने
पि द्वैयमिति, असामिस्तु
वामतन्त्रे स्मृतित्वं पूर्वमेव निर
स्तन्तत्रानुभवत्वस्थापनात्
किं च यस्य पशुहिंसादेः पाप
जनकत्वं तस्य यागकालाव
च्छेदेनापि पापजनकत्वम्
अतएव यागोत्तरं प्रायश्चित्त
विधानम्, अन्यथा तदनर्थ
कं स्यात्, पृ० ४० पं० १६। नच त
न्त्रादौक्त चिन्मात्रगमनं विहित

मितिवाच्यम् यंत्रपूजातत्सं
स्कारकाले शोधनादिरूपताड
नस्यजलसिंचनादिरूपप्रका
रविशेषस्य विधानादिति॥ अ
त्रास्मान्पृष्ट: कोविदारानाचद्द
द्भूतिन्यायमनुसरतिस्वयंमत्र
त्र गमनेमाशङ्क्यानन्तुरूपो
त्तरकरणात्, पृ० ४१ पं० १ स्त्री
यातिरिक्तानामपण्यानां चग
मनेसर्वत्रदोषश्रवणादिति॥
दुष्टव्योऽत्रवामाचार:। स्त्रीया
भिन्नानामपण्यानांगमनेदो
षंस्त्रीकुर्वन्तिवामिन:। स्त्रीया
भिन्नानांपण्यानांचाण्डाल्या
दीनांकुलाष्टकानांमत्स्यक्री
तानां च गमने दोषाभावो ऽ
भ्युपेत:। अस्तु व्यभिचारज

न्यदोषाभावस्तासु गमने जा
तिपातत्वं केन वार्य्यते, अ
हो अगम्यागमनमपि पूजा
त्वे स्वीकुर्वन्ति वामिनस्ते नैव
धर्म्मोत्पत्तिमभिमन्यन्ते, प
यत्र परकीयायाः स्त्रीयात्वस
म्पादनाय तान्त्रिक विवाह सं
स्कारोऽभिहितः स च व्यावर्ण्य
मानो मातृगमनमपि मातरि
व्यावर्त्तयतीत्युच्यते तदसद्ग
व विधेयो वामैः परकीयाया ए
व तत्स्वीकारात्, मातुरपि पि
तृसम्बन्धित्वेन परकीयात्वा
विशेषात् पुरुषप्रधानो हि सं
स्कारः पुरुषं संस्करिष्यति
यः संस्कारो यस्य द्व कर्तृत्वे
न निर्दिष्टस्स च तस्यावश्य

क इति मातापि संस्क्रियतां का
मिभिः परकीयात्वविशेषादि
ति, पृ० ४१ पं० २। अत एव निर्वा
णतन्त्रे विवाह संस्कारप्रकार
णे परकीयायाः स्वीयात्वसंपा
दनायैव तान्त्रिकं विवाहान्तरं
च कन्यादानकालिकं तत्पूजना
र्थं विहितम्, प्रथमस्वीयाया
मह कमते रानन्दपरायणस्य देव
ता ध्यानमकोमा भद्दितिस्वयं
वैदप्राणतो श्चिव्या मितिक्ष अ
नु दृष्टो यमनुनर्विवाहसंस्कारे
वामिनां येन चाण्डालादियोषि
तस्संस्क्रियन्ते, न त्वत्र परकीये
ति सामान्यपदोपादानं क्वचन्त्तो
विशेषस्त्रीणां ग्रहणेन दोषमारो
पयन्ति भवन्त इति चेन्न चाण्डा

ली चर्मकारी चमातङ्गी पुल्क-
सी तथा श्वपची खनकी चैव
कैवर्त्ती विश्वयोनिके ति वच
नात्, सामाजिके स्वक्षतयोनि
बालविधवायाः सवर्णेन पुरुषे
ण पुनर्विवाहोऽभिहितः । वा
मिभिस्तु शूद्रादि चाण्डालप्र्य
न्तानां सधवानां ब्राह्मणेन स
ह पुनर्विवाहो भैरवी चक्रका
ले स्वीकृतः । ब्राह्मण्या शूद्रा
दि चाण्डालान्तानान्त्वेति सा
माजिकेभ्यो वामिनां विशे
षः । आनन्द परायणस्य-ना
मदिग्धयानन्द सक्तस्य,- स्वी
यायां- स्वपत्न्याम, अरूढ़
मतेः- विरक्तचित्तस्य, कौ
लिकस्य परकीयया पुनर्वि

वाहः। अन्यथा परकीयायां
मनसः स्थैर्ये देवताध्यानभ
ङ्गः स्यात्, अतस्तयाविवा
हं विधाय तेन स्वीयां स्वन्तत्र
सम्पाद्य तया च सङ्गं विधाय
पुनर्देवताध्यानभङ्गो न भवि
ष्यतीति प्राणतोषिणीग्रन्थे
स्पष्टम्, अतएव ग्रन्थस्यापि
संज्ञाऽन्वर्था, यथा दैत्यदान
वानामसुरेतिसंज्ञा असुषु प्रा
णेषु रमन्त इत्यसुराः तथैव य
मपि प्राणान् तोषयतीति प्रा
णतोषणी, आसुरीत्यर्थः। ए
वं म्लेच्छचाण्डालानामपि स्वीया
स्वहृढमतीनां ब्राह्मण्यां पर
कीयायां मनसः स्थैर्ये देवता
ध्यानभङ्ग भीत्या तामुपयम्य

स्त्रीयात्वं सम्पाद्य सकञ्चविधा
यन्नतेषामपि भविष्यतीति॥
पृ० ४१ पं० ६। कुण्डगोलादिरेतो
दानं क्व चिद्दृश्यते तस्य का गति
रितिचेत्समयाचारतन्त्रादौ पु
ष्पद्वययोजनेन रक्तचन्दनस्य
तत्रविधानादिति॥ अत्रकु
ण्डगोलरेतोदानस्य क्वचिद्दृ
ष्टस्य गतिं विचिन्वन्ति विचि
न्त्वंश्च समयाचारतन्त्रे रेतोदा
नस्थाने पुष्पद्वयसंयोजने
न रक्तचन्दनदानमुपलब्ध
वान्, तच्च प्रतिनिधिविधान
न्तदेवस्याद्यदिकस्य चित्त
मिनो नापुंसकत्वदोषेण रेतो
ऽभावः स्यात्तन्ते च तस्यम
रक्तस्यैव दानं नतु तस्यानो

परत्वाच्चन्दनदानमिति॰पृ॰
४१पं॰१॰।स्त्रीमात्रदर्शनेनश्री
जगदम्बादिध्याननमस्कृति
कुलसङ्गमध्यानस्यदेवता
प्रसन्नताहेतुत्वेनावधारणात्
तदुक्तेः।स्वीयापण्यस्त्रीछित
यमात्रविषयस्ययोगेनब्रह्म
रन्ध्रतर्पणरूपवज्रौलीक्रि
याविशेषस्यैवशक्तिपूजादि
कस्यविधानादिति॥अस्तु
स्त्रीमात्रदर्शनंजगदम्बाध्या
ननमस्कारार्थंपुरुषमात्रद
र्शनेऽपिशिवविष्ण्वादिध्यान
नमस्कारार्थंकुलसङ्गमस्य
चाण्डाल्यादिकुव्यभिचाररू
पस्यध्यानंदेवताप्रसादहेतु
स्तुकिंमानंचाण्डाल्यादिस्त्री

मात्रदर्शनमेव च जगदम्बा
स्मारकं नान्यदित्यत्र च किंचि
न्निगमकमिति,, पृ० ४१ पं० २८
पूर्वोक्तरीत्या संभवेनायोग्यत्व
हेतोः स्वरूपासिद्धत्वान्न प्रामा
ण्यसाधकत्वमिति। अस्म
दुक्तरीत्या तु तत्संभवेनायोग्य
त्वहेतोस्तत्रसत्त्वाद्भवत्यप्रामा
ण्यसाधकत्वम्,, पृ० ४२ पं० २
एवं महापातकसंसर्गिपरिग्र
हयोग्यत्वं च स्वरूपासिद्धमि
ति। अस्यापि प्रायश्चित्तभि
न्नमहापातकसंसर्गिपरिग्र
हयोग्यत्वविवक्षयानप्राय
श्चित्तिमादाय व्यभिचारः। अ
सिद्धेस्तु पूर्वमेव निरस्तत्वाना
प्रामाण्यसाधकत्वे कश्चिद्दोषः

पृ०४२पं०९। तन्त्रधर्म्मश्चातुर्व
र्ण्यस्वीकृतत्वसमानाधिक
रणयुगचतुष्टयवृत्तिमान्
साधारणधर्म्मत्वात् इत्यादि
वदितिः अत्र साध्ये साध्यता
वच्छेदकाभावरूपा साध्याप्र
सिद्धिः। वामतन्त्रेषु ब्राह्मण
स्यानधिकारसाधनात्, चा
तुर्वर्ण्यस्वीकृतत्वाभावात्,
यत्रायं तन्त्रं पक्षीकरोति तत्र स
र्वत्र वामतन्त्रस्याधमम्, अन्य
थाभासिद्धिः स्यात्, किंच
वामतन्त्रधर्म्मेण चातुर्वर्ण्य
स्वीकृतत्वसमानाधिकर
णयुगचतुष्टयप्रवृत्तिमान्
धर्म्मवृद्धाप्रणीतत्वाभावात्
वृद्धधर्म्मवत् किं नाध्यन्तेप्रणी

तत्वेनाभिनव धर्मत्वात् पास
ऽधर्मावदित्यनेन सत्प्रतिपक्षित
त्वात्, न चाप्रयोजकत्वम्, वि
पक्षे बाधकतर्काभावात्, स
त्प्रतिपक्षितत्वं च, प्रकृतप
क्षधर्मिक प्रकृत साध्य वि
धेयकानुमितित्वव्यापक
प्रतिबध्यता निरूपित प्रति
बन्धकतावच्छेदकत्वे सति
विशिष्ट पक्ष विशिष्ट साध्य
ग्रहत्वाव्यापक प्रकृत पक्ष
धर्मिक प्रकृत साध्य विधे
यकानुमितित्वव्यापक प्र
तिबध्यता निरूपित प्रतिब
न्धकतावच्छेदक विषयिता
वच्छिन्नानुमिति निष्ठ जन्य
ता निरूपित जनकतावच्छे

दिकायादृश विशिष्ट निरूपित
विषयिता तादृशविषयिताशा
लित्वम्, हृदो वह्निमान्धूमा
दित्यादौ वह्न्यभाववद्व्याप्यव्या
प्यवद्ध्रदावति व्याप्तिवारणा
य सत्यन्तम्, वन्ह्यभाववद्ध्रद
ावति व्याप्तिवारणाय जन
कतावच्छेदकान्तम्, काञ्च
नमयह्रदः काञ्चनमयवह्नि
मानित्यादौ काञ्चनमयत्वा
व्याप्यवद्ध्रदादौ काञ्चनमय
त्वाभाव व्याप्यवद्ध्रदादौ चा
तिव्याप्तिवारणाय विशिष्टपद
विशिष्टसाध्यग्रहत्वाव्यापक
त्वस्योपादानम्, पृ०४२ पं०१३
वामतान्त्रिकधर्मो वैदिकध
र्मसमानाधिकरणः साधार

णधर्मत्वात् सामान्यविशेष
योः सामानाधिकरण्यनियमा
दिति । अत्रापि हेत्वसिद्धिर्कौ
लणस्य वामेऽनधिकारसाध
नात् । किं च वाममतन्त्रे धर्मप्रमा
णत्वाभावस्य साध्यत्वेन विवा
द्यस्थलत्वात् प्रसिद्धिरपि बो
ध्या, वाममतन्त्रस्यास्माभिर्ध
र्मजनकत्वस्वीकारात्, मार
णोच्चाटनस्तम्भनोन्मादकत्वा
द्यभेष्टसम्पादनं विना धनपु
त्रादिष्वभेष्टसम्पादकत्वाभा
वात्, किं च धर्मपदेन धर्मसा
धनक्रिया विवक्षिता तथा चो
भयोः क्रिययोः सामानाधि
करण्यस्यैवाभावात् साध्याप्र
सिद्धिरपि क्रियायाः क्षणिक

त्वादैदिकक्रियापक्षणे वाममता
न्त्रिकक्रियानाशात् किं चवै
दिकक्रियापत्रानुष्ठीयते नहि
तत्र वाममतन्त्रप्रतिपाद्यास्त्राणा
ल्याद्यआहूयन्ते नापि भगलि
ङ्गस्तत्र निष्पाद्यते नापि
भगपूजनन्तत्रानुष्ठीयते नापि
योनिक्षालितं तोयतर्पणं जिह्व
याचोनिलेहनं वाऽनुष्ठेयमिति
पृ० ६२ पं० १५। व्यापकधर्मो व्या
प्यधर्मसमानाधिकरणः व्या
पकत्वादित्यनुमितिरपि बो
ध्येति। अत्रार्थतः पुनरुक्ति
रियं सामान्यविशेषयोर्व्या
प्यव्यापकत्वात्, व्याप्यव्याप
कत्वासिद्धिश्च अनुपदोक्त
रीत्यैवास्य खण्डनादितिभावः

पृ०४२पं०१६। एवं वामतान्त्रिकधर्म्मिः स्वविशिष्टः साधारणधर्म्मत्वादितिकेऽ अहो कीदृशोऽयमसम्बद्धप्रलापः प्रथमतो वामतन्त्रधर्म्मस्याप्यप्रसिद्ध्या पक्षासिद्धिः पुनश्च स्वस्मिन् स्ववैशिष्ट्याभावात्साध्याप्रसिद्धिः। ब्राह्मणस्यानधिकारसाधनाद्धेत्वसिद्धिश्च अनेन न्यायप्रयोगेनास्यन्याय तत्त्वानभिज्ञत्वं व्यज्यते, अग्रिमं वैशिष्ट्यन्त्वत्यसमञ्जसम्, तथाहि स्वावच्छेदककालावच्छिन्नत्व स्वावच्छेदक स्थूलशरीरावच्छिन्नत्व स्वीयकालिकसंसर्गावच्छिन्न-व्यापकत्वव त्वैतन्त्रितयसंस

गोठेत्युक्तम्, अत्रस्वावच्छेद
केन कालेनावच्छिन्नत्वमन्य
स्मिन् वाच्यं येनप्रतियोग्यनु
योगिनोर्विशिष्टबुद्धिनिया
मकत्वरूपं सम्बन्धत्वन्तत्रघटे
त, कथंस्वस्मिन्नेवस्वसम्ब
न्धत्वम्, यथाहि स्वावच्छेद
कं कालन्तदवच्छिन्नत्वं सुखे
वर्त्तते भवतिचसुखेधर्मस
म्बन्धस्तथाचधर्मविशिष्टं
सुखमितिविशिष्टबुद्धिरपि
तत्रास्ति, स्वावच्छेदकं स्थूल
शरीरं तदवच्छिन्नत्वमपि सु
खेवर्त्तते भवतिचसुखे धर्मस्य
सम्बन्धस्तथाचात्रापिधर्मविशिष्टं
सुखमिति विशिष्टबुद्धिः।अत्र
चत्वंस्वस्मिन्स्वसम्बन्धं कुवन्न

धिकतरमुपहसनीयो विद्वा
न्. अत्रैवमपार्थकमभिदधानः
केनोपपेय इति न विजानीमः
स्वीयकालिकसंसर्गावच्छिन्न
व्याप्यत्ववत्त्व सम्बन्धस्त्वतिविरु
द्धः स्वीयेत्यत्र स्वानुयोगिके त्वर्थ
स्यात्स्वत्वन सम्भवति स्वप्रतियो
गिके त्वर्थों वास्यात् सर्वाप्यसङ्ग
त एकस्यैव प्रतियोग्यनुयोगि
त्वाभावात्, किंच कालिकसंस
र्गस्य व्याप्यत्वस्य चावच्छेदकावच्छे
दकभावे व्याप्यतावच्छेदक स्येतिवाच्यं य
दि कालिकसंसर्गस्यैव तर्हि का
लिकसंसर्गव्याप्यत्वं वाच्यं कथं
कालिकसंसर्गावच्छिन्नव्याप्य
त्ववत्त्वमुक्तम्. अवच्छिन्नत्वं चा
वच्छेदकतानिरूपितत्वं तर्हि क

स्यसाध्यापयतां संसर्गे स्यैव नयो
र्व्याप्यव्यापकभावऊहएवनत्व
वच्छेद्यावच्छेदकभावस्तयो रिति
एवमग्निमन्निकमपि स्वविशिष्ट
वैदिकधर्मवदृत्तित्वस्वसमा
नाधिकरणवैदिकेतरवर्णवृत्ति
त्वस्वतादात्म्यत्रितयेनेति बोध्य
मिति। सर्वमस्पृष्टम्, एतन्निकं
विद्वद्भिर्निरीक्ष्यमाण्या. लक्ष्यमेव
लक्ष्यन्ति, पृ० ४४ पं० ३। इतरवर्ण
स्यापि यथेमां वाचं कल्याणीमा
वदानि ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्रा
यचार्यायेत्यादिमन्त्रेण। यजुः
२६।२। यज्ञेकयाविद्विस्याभोज
नकर्मकरणस्वात्मकदक्षिणा
दिनाग्रहणप्रदर्शनेनसत्वस्यत
द्धर्मस्यकचित्सहदेवपूजादि

भक्तिकालिकोपस्थितिलाभा
त्, एतन्मन्त्रबलेनैव वर्णितं प्र भक्ति
कारकोपदेशविषयता व्याप
कं वर्णत्वात् यन्मैवं तन्मैवमि
त्यादि ❀ अत्र वर्णत्वे भक्तिप्र
कारकोपदेशविषयताव्यापक
त्वसाधनाद्धा मतन्त्रप्रामाण्ये
किमायातम्, अस्तूपासनाका
ण्डस्य तन्त्रोपयोगः आर्षतन्त्रा
णां नारदपञ्चरात्रादीनां वा, वा
मतन्त्रेण तु प्रायो व्यभिचार प्रका
रकोपदेश एव वर्णित इति चेत्,
किंच वर्णाश्रमरहितेषु च पू
र्वोक्तोपदेशो नरकपातजनक
श्च क्रियते, तस्य जैह्म्यापार
मिति किंच मन्त्रास्तन्त्रवाक्
प्रकाशनेवामतन्त्रप्रामाण्ये कि

माप्तम्, अत्र सायणाचार्य्यमते ऽस्य मन्त्रस्य दक्षिणाप्रकरणस्थत्वात् यजमानोक्तिरियम्, अस्यार्थः। यथा, येन प्रकारेण, इमाम्, प्रत्यक्षभूताम्, वाचम्, सत्यप्रियां वाणीं, अहं, आवदानि, समन्तात् वच्मि, केभ्य इत्याकाङ्क्षायाम्, ब्रह्मराजन्याभ्याम्, ब्राह्मणक्षत्रियाभ्याम्, आर्य्याय, वैश्याय, शूद्राय, इत्यत्रानिरवसितशूद्राय, इति प्रतिभाति अग्रे सर्वे निरवसिता ग्राह्याः स्वाय, स्वीयाय, पुत्रादिकाय वा, सि (?) योऽदेवानां दक्षिणायै दातुः (?) इह, अस्मिन् लोके वा, देवानाम् अजनीदानां विदुषां वा, प्रियः, भूयासम्, स्याम्, मे, मम,

भक्तिकालिकोपस्थितिमा
त्र, एतन्मन्त्रबलेनच वर्णितं भक्ति प्र
कारकोपदेशविषयता व्याप
कं वर्णित्वात् यन्नैवं तन्नैव मि
त्यादि ॥ अत्रवर्णित्वे भक्ति प्र
कारकोपदेशविषयता व्यापक
त्वसाधनाद्वामतन्त्र प्रामाण्ये
किमायातम्, अरूपासनाका
ण्डस्य तन्त्रेपयोगः। आर्षतन्त्रा
णां नारदपञ्चरात्रादीनां वा, वा
मतन्त्रेणतु प्रायो व्यभिचार प्रका
रकोपदेशस्य वर्णेषु क्रियते,
किंच वर्णाश्रमरहितेषु च पू
र्वोक्तोपदेशो नरकपातजनक
श्च क्रियते, तस्य जेहव्यापार
मिति किंच मन्त्रात्मन्त्रतत्वां कं
प्रकाशनेवामतन्त्रप्रामाण्ये कि

माप्नोतम्, अत्र सायणाचार्यो मतेऽस्य मन्त्रस्य दक्षिणा प्रकरणस्थत्वाद् यजमानोक्तिरियम्, अस्यार्थः। यथा, येन प्रकारेण, इमाम्, प्रत्यक्षभूताम्, वाचम्, सर्वप्रियां वाणीं, अहं, आवदानि, समन्ताद् ब्रवीमि, केभ्य इत्याकाङ्क्षायाम्, ब्रह्मराजन्याभ्याम्, ब्राह्मणक्षत्रियाभ्याम्, आर्याय, वैश्याय, शूद्राय, इत्यत्रानिरवसितशूद्राय, इति प्रतिभाति अग्रे सर्वे निरवसिता ग्राह्याः। स्वाय, स्त्रीयाय, पुत्रादिपरिवाराय वा, सिद्धो देवानां दक्षिणायै दातुरिह, इह, अस्मिंल्लोके वा, देवानाम् यजनीयानां ऋत्विजां वा, प्रियः, भूयासम्, स्याम्, मे, मम,

कामः। अयम्, इष्टसुखेच्छा, इ
यम्, सम्यक् धातारम्, सम्बद्धः, स्व
धतारम्, वर्धताम्, अप्रमादेनास्त
तु, मा, माम्, अदः, इदं मित्रसु
खम्, उपनमतु, सम्यक्प्राप्नो
तु, इत्यथर्ववेदेऽस्यालिकोक्तेन
न स्वरूपादर्शिणां तस्याः शूद्रा
दिभ्यो दानेऽकामस्ति: को बाध
स्य प्रामाण्ये तस्य उपयोगः। त
स्मात् सर्वोपयसम्बन्धध्ययनादर
त्येति। पृ० ४३ पं० १५। अपि च वेदा
नां सत्ययुगादिकृति समस्ति
नवानो चेद्धेतो व्यभिचारो वे
देपि साध्याभाववति प्रमाणाह
ते हेतोः स स्यात्, अपि चेत्सू
र्यो नहि श्यावेद प्रामाण्य स्यी
कार्यैस्तैस्तस्याभावात् सत्यपु

मादिवृत्तित्वानुमाने स्वरूपासि
द्धो हेतुः। तेनापि हेतुना धर्म्म
प्रामाण्यानुमानात्सम्प्रतिप
न्नित्यश्चेति॥ अभपूर्वमनेन
युगादिनीमतान्निकधर्मेवा
न्कुण्ड्यो न्यादि प्रकार भेदभि
न्न यत्राकलापघटितवैदि
कधर्मत्वात् अद्यतन धर्मे
वदित्युक्तम्, यदाहि युगादे,
सत्ये, वामतन्त्रस्यैवाभावः। त
न्वेदनामेवान्यादि दशम्भूर्
तत्त्वात्पुनर्वाम धर्मत्वं कुत
स्त्यन्तस्य पश्चात्कलौ भूतैव
भिचारिभिः प्रणीतत्वात्, तथा
च साध्याप्रसिद्धिः। न वा कुण्ड
गोन्याद्येकदेशे न वैदिकधर्म
त्वं हेतुस्तस्य बुद्धतन्त्रा

दि साधारण्यात्, नापि वा मत
त्त्वे वेदप्रामाण्यस्वीकर्त्रे स्वीकृ
तत्वाभावो येन स्वरूपासिद्धौ
हेतुः स्यात्, किन्तु तत्स्वीकार्त्रे
स्वीकृतमेव, एकदेशेन स्वी
कारस्य प्रामाण्याप्रयोजक
त्वात्तस्यास्तिकनास्तिकतन्त्र
साधारण्यात्, नवा तेन सत्प्र
तिपक्षितत्वम्॥ पृ० ४४ पं० २५
अथ सर्वकालावच्छिन्नग्राह्य
त्वयोग्यत्वं सदातनत्वन्तद
भावश्च हेतुर्योग्यत्वं स्वसत्ता
समानकालिकग्राह्यतावच्छे
दकं वेदत्वादिमत्त्वन्तच्च वेद
काले सर्वेषां वास्तीति चेन्न, त
द्देववामतकेपि सत्वेनासिद्ध
त्वात्, किंच सर्वांशावच्छिन्न

ग्राह्यत्व सामान्याभावो हेतुः यत्किंचिदंशावच्छिन्न ग्राह्यत्वाभावो निरुक्त ग्राह्यतावच्छेदक धर्मावच्छिन्न प्रतियोगिताक पर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छेदक रूपवृत्तिर्स्थियोःभिन्नत्वाभावोवारूपवृत्तित्वंच त्वावच्छेदकतात्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक पर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छेदकत्व संसर्गेणेति अत्र द्वद्वयः कीदृशोऽयं प्रतारकः स्वतन्त्रः यदा हि सर्वांशावच्छिन्नग्राह्यत्वसामान्याभावो यत्किंचिदंशावच्छिन्नग्राह्यत्वाभावो वेति विकल्पितस्तर्हि किमर्थं निरुक्त ग्राह्यतावच्छेदक धर्म्मावच्छिन्नेत्याद्यपार्थकाभिधानम्ः

किंचैतस्य सम्बन्धस्य यल्लिंगमि
दं शावच्छिन्नग्राह्यताभावेन कु
तः। आवश्यकश्चेतर्हि सामान्या
भावेनायं पाठो ऽयः। बहूनि पु
स्तकानि मुद्रितानि गच्छन्तु यतस्त
तः पाठास्तेषां सम्बन्धस्तु बु
ध्या सम्प्रधार्य्य कार्य्यः। कुत्रायं
पाठ उपयुज्यत इति। किं वा न्या
याभिज्ञत्वं स्वस्मिन् घोतनायैवा
यं न्यायपारस्लैतत्स्वमवलम्बनमि
हैषुष्पति षुलाभो विद्वत्सु तत्प
हसनीयस्तवासम्बद्धकस्यास्य। न
हि सर्वत्रावच्छेदकावच्छिन्नत्वं
विद्वद्भिः प्रयुज्यते यथा त्वं प्रयु
ङ्क्षे त्वया सामाजिकान्निमुद्रा
प्यपत्रं प्रेषयता तत्रासंबद्धमुप
निबध्नता ऽन्येपि प्रेक्षावन्तो ऽत्र

यत्किमत्वारोपविषयीकृतत्वेन
धिकेन मुख्यकल्पितत्वात्॥१॥ त
था हि अत्वावच्छिन्नाधिकहि
तोचारत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्र
कारतानिरूपितत्वावच्छिन्न
ताद्दशसंसर्गावच्छिन्नप्रकारता
निरूपितत्वावच्छिन्नताद्दश
संसर्गावच्छिन्नप्रकारतानिरू
पित अत्वावच्छिन्नताद्दशसं
सर्गावच्छिन्नप्रकारतानिरूपि
तपदीयकात्त्विकविपर्यय
संबन्धप्रयोज्यलक्ष्यार्थग्रहत्वा
वच्छिन्नप्रमाविषयार्थस्तत्रकि
चिदपि विषये शाब्दाभिज्ञानमे
व विशेषोऽपि युज्यते शाब्दविषय
कज्ञानजनकत्वेन प्रमात्वावगा
हिज्ञानविषयत्वस्यमलब्धेरि

त्वेतेषामितिकि अनन्तरुक्तयोः सम

वायैकाभिधायकः। किमर्थोप

दघटकोरकारः सर्वेषामाकारण

मादुरत्वादिपदघटकानाम व्य

वहितोत्तरवर्तित्वेनावच्छि

न्नेत्यादिषु जातिपर्यन्तं सर्वत्रा

नुधावति, किंच प्रकारता विशे

ष्यतात्मकविषयतयोर्ज्ञाने अ

कृतिभिरेव निरूपितत्वेनोभा

मेवसविषयकत्वामनुपदी

येतिपदनिरूपितत्वम्, किंच

रत्वावच्छिन्ना प्रकारताकघास

व्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धावच्छि

न्नास्यात्, किन्तुरत्वावच्छिन्ना

विशेष्यतेति वाच्यम्, एकनि

ष्ठविषयतयोर्भेदाघर महा

वार्थे मते, तच्चैव वच्चे

महूर्त्तपक्षमासवर्षनिर्वर्त्तनीय
स्यवोधकवेदभागेनास्तिसर्व
कालावच्छिन्नग्राह्यत्वम्, ग्राह्य
त्वनिवेशेचायमभिप्रायः कुत्रचि
त्कालीयशाङ्कर्य्यादियुगादाधर्य्या
दिकोटिपत्रेषुव्याप्तिलक्षणेग्राह्य
शब्देनसाध्यंगृह्यतेतथाचसा
ध्याभाववदवृत्तित्वेमहानसीय
वह्न्यभावतत्तद्वह्न्यभावमादायाव्या
प्तिवारणायसाध्यतावच्छेद
कतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिता
कपर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छेदस्य
पवृत्तिप्रतियोगिताकाभावोवि
वक्षितः। रूपवृत्तित्वंचस्वाव
च्छेदकतात्वावच्छिन्नप्रतियो
गिताकपर्य्याप्त्यनुयोगिताव
च्छेदकत्वसंसर्गेण, समन्वय

च्छेत्यम॰ साध्यतावच्छेदकंय
वह्नित्वन्तदवच्छिन्नप्रतियोगि
ताकपर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छे
दकंरूपंवह्नित्वगतमेकत्वंन
तुमहानसीयत्ववह्नित्वगतद्वि
त्वन्तस्यतुमहानसीयत्ववह्नि
त्वोभयधर्म्मावच्छिन्नप्रतियो
गिताकपर्य्याप्त्यनुयोगितावच्छे
दकत्वान्नतुसाध्यतावच्छेदक
वह्नित्वधर्म्मावच्छिन्नप्रतियो
गिताकपर्य्याप्त्यनुयोगिताव
च्छेदकमितिनतमादायवह्नि
मान्धूमादित्यत्राव्याप्तिः। अ
नेनचग्राह्यशब्दएतद्ग्रहणायै
वनिवेशितोऽन्यथासद्वातन
त्वस्यत्वत्यन्ताभावप्रतियोगि
तानवच्छेदकधर्म्मवत्वस्यैव

दकभावो जगदीशभट्टाचार्य्यम
तेच निरूप्यनिरूपकभावः।
तथाचरत्वावच्छिन्नविशेष्य
त्वावच्छिन्नप्रकारतावाच्या
रत्वावच्छिन्नविशेष्यतानि
रूपितप्रकारतावावाच्या,
किंचार्थ्येत्यत्रवर्णचतुष्टयं कथं
पुनरन्तेवर्णे अत्वावच्छिन्नप्र
कारतानहितदुत्तरवर्त्तिःकाग्नि
र्णो विशेष्योयत्रस प्रकारःस
त, किंचविपर्य्ययसम्बन्धे त्यत्र
लक्षणासम्बन्धोऽस्वामिप्रेतोन
हितावद्विपर्य्ययपदंलक्षणा
वाचकन्तस्यवैपरीत्येरूढत्वात्
यदिशक्तिर्निर्दिष्टाऽपिपूर्वंभवे
त्तदापिनशक्तिवैपरीत्यमेव
लक्षणाकिंतुएवञ्चसम्बन्धसे

पापात्तस्मा: शक्तित: पार्थक्या
त् तस्मादपदार्थं वदन् विद्वान्
सहसनीय: सतां शोचनीयो
मूर्खाणां मनाघनीयश्च स्यात्।
सम्प्रति प्रकृतमनुसराम:। अ
यसर्वैकालावच्छिन्न ग्राह्यत्व
योग्यत्वं सदातनत्वमिति सदा
तनत्व परिष्कृति:। अत्रप्रष्टव्य
श्चाभूतपूर्वाणां परिष्काराणां
स्रष्टा, किं भो:। अवच्छिन्नत्व
ग्राह्यत्व योग्यत्वानां निवेशे
किं प्रयोजनम् अत्यन्ताभावा
प्रतियोगित्वमेव सदातनत्वं
ग्राह्यत्व निवेशे किं प्रयोजनंय
स्मिन्नह्ययं नियमो य: सदा
न: स ग्राह्य एवेति किंच ग्राह्य
त्व निवेशे वैदिक कर्मणोपि

किं चाग्रिम विकल्पदूषणम
प्यसङ्गतम्, तत्र नाद्य इत्यनेन
सर्वांशावच्छेदेन गोमेधीयगवा
लम्भबोधकवेदवाक्यावच्छेदेन
कलिनिषेधकपराशरस्मृतिवले
नग्राह्यत्वाभावसत्त्वादसदातनत्व
प्रसक्त्याभिन्न [illegible] प्रदर्शनमस
ङ्गतम्, कुतो यद्धि त्वया ग्राह्यता
वच्छेदकवेदत्ववत्त्वमनुस्तत
न्तत्तादृशवेदत्वजातिमत्त्वस्य
तादृशवेदवाक्येपिसत्वेन ना
त्रासदातनत्वप्रसङ्गेनभिन्न मि
चार: अहो कीदृशोयं विस्मर
णशीलोयं: को नाम पिना
बधारयति? किं चयदुक्तं गवा
लम्भबोधकवेदभागेतादृशग्रा
ह्यतावच्छेदकानदिगीतविधि

कवेदत्वाभावेन व्यभिचारताद
वस्थ्यादितितदप्यसङ्गतम्, अ
न विगीतेत्यत्र विरुद्धंगीतं वि
गीतंन विगीतमविगीतमविरु
द्धमितियावत्, न अविगीत
मनविगीतमपुनर्विरुद्धमिति
यावत्, तथाच विरुद्धविधिक
वेदत्वाभावेनव्यभिचारप्रदर्श
नंनघटते पराशरस्मृतिविरुद्ध
विधिकवेदत्वस्यैवतत्रसत्त्वा
त्, किंच पूर्वपरग्रन्थविरोध
श्च पूर्वहिपराशरस्मृतिविरु
द्धत्वेनैवग्राह्यत्वाभावस्तत्र
स्थापितः अग्रेऽप्यविगीतविधि
कत्वसमानाधिकरणवेदत्व
स्यैवग्राह्यतावच्छेदकत्वरूप
योग्यत्वस्यस्वीकरणीयत्वादि

सदातनत्वं गगनादि सदातनप
दार्थेषु शास्त्रकृद्भिः स्वीकृतं क
थंनाभ्युपेतम्, ग्राह्यत्वनिवे
शे च योग्यत्वस्यावश्यकत्वेन
गौरवं च स्यात् अन्यथा गवाल
म्भबोधकवेदभागस्य कलौनि
षिद्धविषयस्य कलिकालाव
च्छेदेनाग्राह्यत्वात् तस्यासदा
तनत्वप्रसङ्गः स्यात्, एतच्च त्व
दुक्तरीत्या योग्यत्वनिवेशफल
म्, अस्मदुक्तरीत्या चेश्वरादिस
दातनपदार्थेष्वप्राप्तिवारकत्वा
न्निवेश्यम्, तस्मादप्राप्तिलक्षण
घटकसाध्यपदं परित्यज्याग्रा
ह्यपदं निविशता ग्रन्थः परिश्र
मःकृतः किं वा पाठवैलक्षण्यं ह
ष्टैवतत आह त्यागनिवेशितः।

किंच सदातनत्व परिष्कारे यदु
क्तं सर्वकालावच्छिन्न ग्राह्यत्वयो
ग्यत्वं सदातनत्व लक्षणापि योग्यत्वं
च स्वसत्तासमानकालिक ग्राह्य
तावच्छेदक वेदत्वादिमत्वम्,
अत्रस्व पदेन सर्वकालावच्छि
न्नं ग्राह्यत्वं ग्राह्यं तथा च सर्व
कालावच्छिन्नं यद्ग्राह्यत्वन्तत्स
त्तासमानकालिकं यद्ग्राह्यताव
च्छेदकं वेदत्वादि तद्वत्त्वमित्य
र्थः स्यात्, स चासङ्गत एव द्विधा
कालभानात्स्व सत्ता समानका
लिकेति पदस्य वैयर्थ्यात्, किं
चाग्रिमविकल्पोप्यसङ्गतस्तत्रा
पि सर्वांशावच्छिन्न योग्यत्वाभा
वो वा, इत्येवं विकल्प्यं न तु सर्वां
शावच्छिन्नग्राह्यत्वाभावादि,

स्युक्तं कथं पुनर्मध्येऽन विगीत
विधिकवेदत्वं ग्राह्यतावच्छेद
कमुच्यते, किंच निषिध्यमा
न कालावच्छेदेन ग्राह्यत्ववार
णाय वेदत्वं विमुच्याविगीत
विधिकत्वसमानाधिकरणवे
दत्वस्यैव तादृश ग्राह्यतावच्छे
दकयोग्यत्वमुक्तन्तदयुक्तम्
नहि निषिध्यमानत्वं कालेस
म्भवति, किंतु क्रियायामेव,
किंच पूर्वयोग्यत्वनिर्वचनतो
भिन्नयोग्यत्वनिर्वचने पूर्वाप
रग्रन्थविरोधश्चेति, किंच न
हि स्मृति विरोधे श्रुतेर्ग्राह्यत्वं
किन्तु स्मृतेरेव न नु तर्हि पराशर
स्मृतेः कोऽपि प्रामाण्य इति चेत् क
ल्यन्तर्गतजनानां प्रायेण वैदि

कलौकिकसामर्थ्याभाववत्ता
ततेषां कर्मणो बाहुल्येन वैगु
ण्याद् व्यर्थपशुबीजादिवधजपा
पमानिर्भयत्वस्मृतेः जपायनात
यन्मन्त्रमूलकत्वेन पराशरस्मृ
तेः प्राबल्यमभ्युपगच्छसि प्र
थमतस्तत्र निषेधवाचकपदा
भावान्निषेधप्रकाशकत्वमेव
तस्यानभ्युपगतं स्याच्चेदश्वमेध
गोमेधादियागोत्तरं प्रायश्चित्त
प्रकाशकत्वमेव किंच मन्त्रस्तु
सामान्यतो निषेधकः स्याद्य
त्र स्यादपि ब्राह्मणवाक्यं पुनर
श्वमेधगोमेधादियागे विधाय
कं कथं पुनस्तन्मूलकत्वेन प
राशरस्मृतेर्विरोधे न गवालम्भ
बोधकवेदभागे ग्राह्यत्वाभावः

कलिकालावच्छेदेन स्थाप्यते।
स्फ तेरश्चात्तुच्चेयामि प्रायेण
प्रणयना नन्त्रस्तुयागोचरं प्रा
यश्चित्ता मि प्रायेण स्मूयते न
हि विधिविहितस्य निषेधामि
प्रायेण विधिस्य हे निषेधान्तव
काशादितिमी मांसकसिद्धा
न्तात्, इति पूर्वमेवत्वदीयदु
गच्चवस्यात्वण्डने साधितमि
त्यनर्गलत्ते वचः। तस्मात्सर्वा
प्रावच्छिन्नग्राह्यत्वसामान्याभा
वस्य प्रथमविकल्प दूषणमस
ङ्गतम्॥ पृ० ४ पं० १२। विगीतत्वं
व्यवस्थोपयिकन्यायाधिगत
निषिद्ध कालदेशादिमत्वं तत
कत्वाभावश्चाविगीतत्वमत्र ज्ञे
यमिति च अत्रतुच्छवस्यापिरव

ण्डितात्तदुपयिकन्यायोऽपि ख
ण्डितः। अत्र गवालम्भबोधक
वेदभागे व्यभिचाराभावात्तथ
मपक्षखण्डनस्य त्वत्कृतस्य
खण्डनम्, अपच यत्किंचिदंशा
वच्छिन्नतादृशग्राह्यत्वाभावप
क्षे दोषदानमप्यसङ्गतम्, नह्य
नभिलषितवेदभागः कश्चित्,
यथाभवद्विधानामल्पज्ञानां भ्र
मविप्रलम्भकत्वादिदोषदूषि
तव्यक्तीनां ग्रन्थाः स्वाश्रयपुरु
षप्रारिप्सितत्वसम्बन्धेन विप्र
लम्भकत्वादिदोषविशिष्टास्त
थेश्वरवाक्यमपि तादृशदोषव
त्त्वेनानभिलषितमग्राह्यं वा स्या
त्, अन्यथाभवद्वाक्यमिवापा
र्थकत्वमसम्बद्धत्वञ्च प्रसज्ये

त, नहि कुत्रचिदपि केनचिद
पं शेनवैदिकवाक्ये ग्राह्यत्वा
भावो येन प्रमाणत्वसाध्याभा
ववति वेदेता दृशग्राह्यत्वाभाव
रूपासद्धेतनत्वहेतोः सत्त्वेन व्य
भिचारः स्यात्, अतोऽसङ्गतमे
वोभयत्र दूषणदानं विकल्प
खण्डनायेति, पृ० ४५ पं० २५।
वज्रसैलिक्रियाद्भुमात्रग्राह्यप
त्याप्पञ्चमभूतात्न. पतान्निकप्र
कारस्याघवज्रसैलिक्रियावि
षयप्रभाविरहेणाग्राह्यत्वेपि
तदितरभागावच्छेदेनग्राह्यत्वा
द्भागासिद्धो निरुक्तरीत्यावेद
स्थौकर्तृस्वीकृतवेदकालिक
साधारणधर्मबोधकत्वादि
हेतुभिः सत्प्रतिपक्षितत्वेसा

दिश्च अहो अज्ञानमहो समाधा
नमहो प्रतारकत्वम्, यदिहि
तान्त्रिकपञ्चमकारपूजाप्रका
रस्य वाममतन्त्रसारभूतस्य मु
ख्यस्यतन्त्रे वामत्व प्रयोजक
स्य प्रमाविरहेणाग्राह्यत्वं त
र्हि तन्मुखादेव वामतन्त्रस्या
ग्राह्यत्वं सिद्धं समाधुः खल्वपि
वादो विनायकं प्रकुर्वाणो रच
यामास वानरमित्याभाणकम
नुसरतः, किंच तदितरभाग
स्य का प्रमात्वं येन तदवच्छेदे
न भागासिद्धिं ब्रवीषि नह्येक
देशेन प्रमात्वे ग्राह्यत्वन्तस्यै
कदेशेनप्रमात्वस्य बुद्धवाक्य
यवनादिग्रन्थेषु सर्वत्रैवाव
शिष्टत्वात्, तत्रोपवासाहिंसा

दिः सत्वात् । किंच योनिलेहन
योनिक्षालिततोयतर्पण योनि
जिह्वाप्रक्षेपपूर्वकमन्त्रजप
स्ववीर्य्यहोमलक्षणादीनाम
पि पञ्चमपूजाप्रकारभिन्ना
नां कथं ग्राह्यत्वं यथा त्वया प
ञ्चमपूजाप्रकारो न ग्राह्यत्वेन
स्वीकृतस्तथायमपि तस्मात्सो
न ग्राह्यः । एकदेशप्रामाण्येना
ग्राह्यत्वे विषयुक्तान्नवत्सर्वम
ग्राह्यमेवेति न स्वरूपासिद्धिः । किं
च वाममतन्त्रं धर्मे प्रमाणं वेद
कर्तृस्वीकृतवेदकालिकस
धारणधर्मबोधकत्वादित्य
नेन सत्प्रतिपक्षितत्वमाहुश्च
न वेदकालिकेतिमध्यविशेष
णान्तद्घटितत्वेनासिद्धिमवे

साधनं साधारणधर्म्मबोधक
त्वमपि पक्षे समतन्त्रे नास्ति, य
दाहि धर्म्मप्रमाणत्वं व्यापिन
सिद्धं कथम्पुनरसिद्धहेतुना
सत्प्रतिपक्षितत्वम्, धर्मे चब्रा
ह्मणस्यानधिकारसाधनात्सा
धारणधर्म्मबोधकत्वहेतोरसि
द्धिश्च, किंच वेदस्वीकर्त्रे स्वीकृ
तवेदकालिकसाधारणधर्म्म
बोधकत्वहेतुः कथं साध्याभाव
स्य प्रमाणत्वाभावाभावस्य प्र
माणत्वरूपस्य साध्यस्य साध
कः । कथं वा तेन तस्य व्याप्तिः क
थं वा साधारणधर्म्मबोधकशा
स्त्रं वेदस्वीकर्त्तृभिरस्वीकृतमि
ति, तस्मादपदार्थमसम्बद्धं व
चनं नस्तोकमपि जिकुतीति,

किंच वा मतन्त्वं धर्मेन प्रमाणं अ
सदातनत्वात् अत्रानेनासदातन
त्वं सर्व कालावच्छिन्न ग्राह्यत्व
योग्यत्वमुक्त तदभावश्च हेतुस्त
क्तः सच ग्राह्यत्व योग्यत्वाभाव
एवसिद्धः। कथम्पुनर्हेतुताव
च्छेदक कोटि प्रविष्टस्यतस्या
भावं हेतुतावच्छेदकाभावरूपं
हेतुत्वेनस्वीकरोति, नहिकद
चिद्धेतुतावच्छेदकाभावोपि
हेतुरिति व्यवह्रियते, तस्मा
ग्राह्यत्वस्य हेतुतावच्छेदकस्या
भावं हेतुत्वेनस्वीकृत्य सर्वांश
वच्छिन्न ग्राह्यत्वासामान्याभा
वो हेतुः। यत्किंचिदंशावच्छि
न्न ग्राह्यत्वाभावोवे तिवदन् वि
दुषामुपहसनीयः सतां शोचनी

यः । अस्य मुखविवरात् किं विनि
र्गच्छति नायमालोचयति किं
मेतु खान्निर्गलितमिति । यतो
हेतुतावच्छेदकस्याग्राह्यत्व
स्याभावं हेतुत्वेन स्वीकृत्य विक
ल्पयति । अयं च यत्रावच्छेद
कावच्छिन्नत्वप्रयोजकत्वं तत्र
न्यायशास्त्राभिज्ञत्वं मनुते ।
अतएवानवसरे प्यवच्छेदका
वच्छिन्नत्वं बहुधा प्रयुङ्क्ते
यथा सामाजिके ५. पत्रे प्रेम
णो आत्मावच्छिन्नत्वादि निर
र्गलमवादीत् तथा त्रापीतिका
स्टः कथयति शास्त्रम् १५.४६
पं.४। महर्षेर्लिलिके कल्पित
त्वादिति दैत्यमिच्चरितेर्हेतुः
महर्षिपदमाक्षेपलक्षणं वा

स्वरूपासिद्धः। सर्वज्ञप्रणीतत्वं
चेद्वेदवत्तन्त्रेप्यसिद्धम्। स्मृ
तिपुराणमिवाद् ब्राह्मणाय सर्व
ज्ञतानध्वविसयाबाधितत्वे
सत्याप्तप्रणीतत्वस्य शाक्यादि
ग्रन्थानामहेतोः परीक्षणे स
र्वज्ञप्रणीतत्वानुपपन्नत्वं
परेणाप्यविदितद्विधिवारणं
दुःशकमिति चेत् अत्रपदकृत्वं वा
मतत्वं धर्मेण प्रमाणं महर्षे
तिरिक्तकल्पितत्वादिस्वत
मानेहेतुर्वेदेऽसिद्धरित इति
तदस्याज्ञानविजृम्भितम्। न
हि वेदे महर्षेतिरिक्तकल्पि
तत्वं मीमांसकमतेन मीमांस
कैस्तु वेदस्य स्वरज्ञानस्येश्व
रवेदानादित्वस्वीकारात्।।

नैयायिकैरीश्वरप्रणीततत्त्व
स्वीकारात्तदपि वाक्यगत्यादि
त्यरूपर्षिद्वारैव, तस्मादुभ
यथापि महर्ष्यतिरिक्तकल्पि
ततत्त्वं वेदे नास्ति कथं तत्र व्य-
भिचारः स्यात्, किंच मह-
र्षिपदस्याप्तोपलक्षणत्वे क
थं स्वरूपासिद्धिः। आप्तत्वंच
यथार्थवक्तृत्वं तदतिरिक्ता
नाप्तकल्पिततत्त्वस्य वामत
त्वे सत्त्वात्, तस्य च व्यभिचा
रि धूर्त्तकल्पिततत्त्वस्वीकारा
त्, यदि च तत्र शिवप्रणीतत्वं
स्वीक्रियते, तदपि तस्य शिव
स्याप्तत्वे नाप्तातिरिक्त
कल्पिततत्त्वस्यसत्त्वान्न स्वरूपा
सिद्धत्वम्, यथा जलन्धरव

धेवच्छलने समुद्रमथने-
चासुरच्छलने विष्णोः कार्यं
सिमयथार्थंच्छले नाना प्रत्वं
यथावादित्वच्छलने बुद्धरूपेण
नाप्रत्वन्तेनच विष्णुना मेरुत
न्त्रे वामसार्गीये,, उवाच मधु
रं विष्णुः सान्त्वयंश्च प्रतारयन्
पूर्वदेवास्सञ्जुयूयमद्यत्याश्च
चयानतः।४७।अग्रेयदिदम्
त्यज्जद्भीयूयन्तत्कीर्तितम्
अग्रेप्येतत्तुदेवाश्चैनिस्सारं
कृताहृतम्,४८ इत्येवं छलन
मनुष्ठितम्, यथा विष्णुनाछ
लेन दैत्येभ्यं ग्राहितन्तथा
शिवेनापितन्नाछलेनसुरादै
त्यकुलेस्थापिता न केवलं-
सुरैव अपितु योनिलेहनं-

योनिक्षालिततोयतर्पणं यो-
निमुखप्रक्षेपपूर्वकमन्त्रज
पादिपूर्वकं ज्ञातिपातत्यजन
कं सर्वं तेनोहितन्तः प्रभृत्यै
वशिष्ठैर्नेगृहीतमिदंमतम्,
अतएवविश्वामित्रोपि शिवं कु
लनकर्माणि प्रशाधं तु रिति, त
स्मादप्रातिरिक्तत्वहेतोरुभय
थापि सत्तान्यरूपासिद्धि
रितिभावः। अनेनतुस्वबाल
नाप्राबल्येनाभिहितमनुमा
नाकौमालेनवा, सर्वज्ञप्रणीत
त्वंचेन्न हर्यातिरिक्तकल्पित
त्वात्तदेवनस्यात्सिद्धमिति
व्यतिस्यवीयः। यघंपाठः लङ्घ
तार्थ इतिकश्चिद्व्याख्यप्रति
जानेशास्त्रं नस्पृशेयमिति,

यदुक्तं स्मृतिषु व्यभिचारवार
णाय सर्वज्ञतात्पर्यविषयाबा
धितत्वे सत्याप्तप्रणीतत्वस्ये
ति तदत्यन्तमनन्वितम् । कि
म्भोः अत्रविशेषणस्यवैयर्थ्ये
कथं वार्यते आप्तप्रणीतस्यै
व वा कस्य प्रमाणत्वं तच्च सर्व
ज्ञप्रणीतमल्पज्ञप्रणीतं वा
अन्यथा लौकिक वाक्येषु स
र्वज्ञप्रणीतत्वाभावात्प्रमाण
त्वं न स्यात् । इष्टापत्तौ सर्वज्ञा
नाभावप्रसङ्गेन सार्वजनी
नव्यवहारलोपस्यात् । किं
चाबाधितसर्वज्ञतात्पर्यवि
षयत्वे सतीत्यबाधितत्वम
पि तात्पर्ये विशेषणीयं वैय
र्थ्यन्तु तथाप्यस्त्येवेति दिक्

यच्चोक्तं सर्वज्ञप्रणीतत्वाभ्युप
गन्तॄणां परेषामपि तदसि
द्धिकारणं दुःशकमिति, तदप्य
त्यसमञ्जसम्, महर्ष्यतिरि
क्तकल्पितत्वस्य सर्वज्ञप्रणी
तत्वार्थकत्वाभावात्, न हि
महर्ष्यतिरिक्ताः सर्वज्ञा भवि
तुमर्हन्ति महर्षिपदस्य सर्व
ज्ञार्थकत्वं भवेदपि सर्वज्ञप्र
णीतार्थकत्वन्त्वति विरुद्धम्
किंच परमते बुद्धशाक्यमुन्ये
षु सर्वज्ञप्रणीतत्वाभ्युपगमे
कथमसिद्धिः। महर्ष्यतिरि
क्तकल्पितत्वान्तस्य सर्वस्य
हेतोः सर्वज्ञप्रणीतार्थक
त्वात्तस्य च परमते न तत्रस
त्वात्, अस्ति चेदप्रातिरिक्त

प्रतीतार्थकत्वे नैव नैरुद्ध
शाक्यादीनामप्रत्वस्वीकारा
त्, तस्मात्सर्वमपार्थकमसि
द्धासिलदसिद्धिकारणं दुः
शकमिति, पृ० ५६ पं० ११ प्रत्यु
तानयारीत्या प्रत्यक्षस्यामेवे
दाः धर्मे सन्दिग्धप्रमाणका
सन्दिग्धकर्तृकत्वादित्या
भासस्यामिति ॐ अत्र स
न्दिग्धप्रामाण्यकाऽतिवे
शेसन्दिग्धप्रमाणकाद्ये
मिथ्यानंव्याकरणतत्त्वानव
बोधस्यमस्य वनकि, किं
चाबालख्यातेवेदवोपव
कर्तृकत्वेऽपि सन्दिग्धे, न
पुनर्वामतक्के तत्त्वोपस्वरक
र्तृकत्वं विनिश्चितमिति अहो

अस्य संस्कार प्राबल्यं येने
दृशो व्यामोहः सम्भूतः। पृ०
७६ पं० १३। निःश्वसितोवेद
इतिवच्च शिव सर्वज्ञेश्वरयै
रव प्रणीतत्व हेतुना तुल्यं प्रा
माण्य साधनं सत्प्रतिपक्षश्चे
ति ❀ अहो सर्वशास्त्र संस्कार
शून्यत्वव्यञ्जकाभिधानमस्य
नहि सर्वज्ञ प्रणीतवाक्यस्यैव
प्रामाण्यमिति नियमः। अन्य
थाऽल्पज्ञानामस्मदादीनामा
प्तानां प्रणीतवाक्यस्याप्रामाण्य
प्रसङ्गे न सर्वज्ञानाभ्यासेन व्यव
हारलोपस्स्यात्, किं च सर्वज्ञा
नामपि विष्ण्वादीनां कार्य्यार्थे
कुत्रचिदज्ञानां वाक्यस्य प्रा
माण्य प्रसङ्गः स्यात्, यथा देवे

म्यस्ति विष्णुपदनार्थं वलिछल
ने, जलन्धर वधार्थं वृन्दाछल
ने च मोहनीरूपेण च दैत्यछ
लने यागो च्छेदद्वारेण दैत्यबु
निर्वलतापादनार्थं बुद्धरूपे
ण दैत्यछलने चानाप्तस्य बि
ष्णोर्नास्ति वाक्यस्य प्रामाण्य
म्, किन्त्वाप्तोक्तस्यैव शब्दस्य
प्रमाणत्वम्, एवमेव भैरवा
दिरूपेण शिवस्याप्यनाप्तत्वे
न कार्यार्थं स्वोक्तेन वामकौ
लमार्गादि विधायक वाक्या
नां नास्ति प्रामाण्यम्, आप्तो
क्तत्वाभावात्, आप्तत्वं च प
थार्थवक्तृत्वं तच्च सर्वेतात्प
र्ययोः समानम्, अनाप्तत्वं चा
यथार्थवक्तृत्वं तदप्युभयोः समा

नम्, तस्मात् सर्वैरुमेरेव प्रणी
तत्वहेतुना तुल्यं प्रामाण्य
साधनं स इति पक्षस्यैति वा
क्यं लिङ्कलाकूपायितम्, इत्थ
यच्छास्त्रं केनोपमेयः । पृ० ५०
पं० ३। निरर्थकाहस्मत्त्रघटि
तत्वादिति सिद्धिः 'अयमनुनकेना
प्य प्रामाण्यसाधने हेतुत्वेना
भिमतः । प्रत्येकवर्णस्यानर्थ
कत्वात्, न कोपि वर्णस्तादृशयोर्थ
वान्न स्यादिति स्वयमेवास्फुटत
मभिधायतन्निरासे तूपहसनी
यत्व, नहि वामतन्त्रेषु धर्मे न
प्रमाणं वन्ध्यापुत्रप्रणीतत्वा
दित्यत्र हेतुदूषणे वामतन्त्रस्य
प्रामाण्यमायाति, तस्माद् यथे
मेव वाक्यजालं प्रसारितमिति,

यदुक्तं मन्त्रायुर्वेदवत्प्रामाण्य
मिति तन्न फलमात्रस्य शास्त्रोक्त
सिद्धेः प्रामाण्यप्रयोजकत्वास्वी
कारात्, अन्यथा मारणगमन
क्रियातो विप्रलम्भकस्य नि
ष्पन्नत्वेन स्त्रादिवामिभिन्नवे
ऽपि प्रमाणं स्यात् न वा मन्त्रान्व
यं दूषयामः किन्तु वाममार्गी
यविधिना तैरनुष्ठानमात्रमेव
त्र कुत्सितविधावप्रोक्ते मतेन
न्त्रा अननुष्ठेयकर्मणि प्रतिक्षि
तम्प्रवर्तितेन,, पृ० ५० पं० ११ अहं
मेरस्य इति भावनोपदेशात्वेन स्वा
तिरिक्तदेवतानिषेधकत्वादि
ति चतुर्दशो हेतुः। तादृशभाव
नाविशिष्टपुरुषप्रणीतत्वादि
ति पञ्चदशो हेतुश्चेन्नाप्रामा

ण्यसाधकावेतौ तयोः सर्वोस्ति
कतन्त्रसिद्धत्वात्, देवो भूत्वा
देवान् यजेतेति श्रुतेः। अभेदभा
वनयैव यतितव्यमिति श्रुतेश्च
सोहमिति निर्देवतामयमात्मानं
विभावयेत्, तस्माद्भयं प्रदर्श्य
तन्निरासो म्लेच्छयवनान् विह
यन सार्थकं बुधैवगन्तव्यमयत्न
प्रयोजकान्निरसनम्प्रयतते
पृ० ५२ पं० १५। एतेनाग्निमहेतुर
पि स्वरूपासिद्ध एव वेदास्वीक
र्ते प्रतिभाविषयत्वं चोपाधिरि
ति, ❀ यदसहंभैरव इतिभाव
नाविशिष्टपुरुषप्रणीतत्वादि
त्यस्य हेतुत्वमेव न स्वीकृतं क
पुनः स्वरूपासिद्धिरुपाधिश्चे
ति, पृ० ५२ पं० २। तच्छिष्टप्रणी

तं शिष्टगृहीतत्वादिति॰ वाम
तन्त्रस्य कथमनुपयुक्तत्वं तन्त्र
मात्रस्यस्वीकरोषि तथा च वा
मतन्त्रं न शिष्टप्रणीतं शिष्टगृ
हीतत्वादित्यनेन प्रत्यवस्थानं
तस्मात्सत्प्रतिपक्षितत्वान्न स
द्धेतुरिति॰॥ पृ० ५२ पं० ४। सुरा
मांसरेतोभक्षणादेर्विधायकत्वा
दिति योऽयं हेतौ व्यभिचार वि
धायकत्वं रेतोभक्षणादेर्विधा
यकत्वं च न प्रमाणसिद्धमिति
अत्र व्यभिचारादिविधायक
त्वस्य रेतोभक्षणादेर्विधायक
त्वस्य च वाममार्गानुसारितन्त्र
ग्रन्थैरस्माभिः साधितत्वान्ना
त्र पुनरपेक्षा, तदिदं प्रमाणसि
द्धमनेनापह्नूयते परन्तु वाममा

र्गीस्य प्रमाणेन (वेदूक्तम ध्यागतंवी
रं क्रूरपश्यामिसाधकम्) इत्या
दिना (योनिलिङ्गामृतैरपि) इत्या
दिनाच किंच यदा स्वदारेलो होमो
ऽजायमाहोमतुल्यत्वमितिसिद्धं
तास्त्रीकृतः कथं नतच्छिष्ट भस
णं स्वतः प्राप्तम्, श्रुतिस्मृतिप्रमा
णासिद्धं नेति तुल्लीकुर्म्मः। अतएव
वल्लभाप हूयते तस्या ग्राह्यत्व स्व
सिद्धिनन्दनीयत्वमथ्यातन्न प्रमा
णासिद्धमिति व द सि० प० ५२पं
७। स्त्रीयापरत्वेन पुंस्त्री पुरुषमि
थुन सम्पर्के कलितरक्तचन्द
नादिरसपरत्वेनेति अत्र पंच
मकारपूजने स्त्री पदस्य स्त्रीयाप
रत्वं तदभेदादिसामान्यतः स्त्रीप
दं स्यान्न तु चाण्डालीचर्म्मकारी

चेत्यादीनां भैरवतन्त्रे ग्रहणमस्ति
किं च पुरुषस्त्रीजातीययुगल
पुष्पसम्बन्धात्कल्पितरक्तच
न्दनरसपरत्वं यद्रेत आचम
नस्थाने नोक्तं तत्प्रतिनिधिवि
धानं मुख्याभावे युज्येत अत
एव कल्पितरक्तचन्दने सुक्तम्
नहि स्वैकदोषाभावे स्त्रीसत्वे
च प्रतिनिधिकरणं स्यात्॥१
पृ० ५८ पं० २३। भगपूजाप्रकार
स्य लिखितयन्त्राभिप्रायकं ब
दितिके अत्रानेन भगाकृतिय
न्त्रपूजनेन स्त्रीयोनिपूजनम
पाकृयते यद्ययन्त्रपूजनमभि
मतन्नर्हि तरुणीं सुन्दरीं रम्यां च
चलां कामगर्विताम्० समानी
य प्रयत्नेन संशोध्य न्यासयोग

तः।२८ प्रसूनमध्यं संस्थाप्य पृ
थिवी कल्पितां चरेत्. मूलचक्रं
संभाव्य देव्याश्चारणासं युतम् ।२१
अहो। तत्र घातैर्यो निःप्रमत्ताः बु
ध्वा यत्नतः संयोगे उपजपत
व्यं सर्वविद्याधिपो भवेत्।३१॥
इत्यादि किमर्थं स्यात्, तस्मात्
स्त्री योनिपूजनमेव भगपूजनं
वाममार्गप्रसिद्धम्, इदमेव च
वामस्य वामत्वमन्यथा सुराप्रा
दस्य तथा सोमरसपरत्वमुपव
र्णितं भगप्रदस्य च यन्त्रपरत्वं त
र्हि वामत्वं कथं स्यात्,, पृ० ५२
पं०१५। अश्वमेधीय गणना न्हे
ति? अत्र यदुत्तरं तत्प्रागेव दत्त
म् दृष्टान्त दार्ष्टान्तिकयोर्भगाश्व
लिङ्गयोर्वैषम्यञ्चेति भावः।

पृ०५८पं०१५। सुराघटितहेतोः सुराशब्दस्यवेदे, हविर्भिरेके इतिमन्त्रैः सवननिष्पादित सोमरसादौप्रसिद्धत्वस्फुरंगो णं मत्सार्थकत्वादीतिचोक्तं प्राक् स्फुरंत्वषुञ् धातोः सुरा सन्धानार्थकत्वं तस्मिन्मन्त्रेच सुन्वन्ति सोममितितत्फलंच शचीमिर्मदन्तइति मादकत्वंच प्रसिद्धमिति अहो कीदृशो ऽयंनिर्गलाभिधायकः स्वतन्त्रः। अतएव शचीभिर्मदन्त इतिमन्त्रवाक्यस्यमादकत्वफलार्थकत्वंवदति, मन्त्रस्य, हविर्भिरेके स्वरितः सचन्तेसुन्वन्त एके सवनेषु सोमान् शचीमिर्मदन्तउतदक्षिणाभिर्नेजि

लायन्त्यो नरकं पतामेति। या
स्कमुनिश्चास्याथमर्थमाह। न
रकं न्यरकं नीचैर्गमनं। ना
स्मिन्नमणं स्थानमल्पमप्य
स्तीति वा। अपि न चेत्येव दृदि
त्येतेन संप्रयुज्यते ऽनुपूर्वे। नचे
त्सुतं पिबन्तीति सुरासु जो ते रेवमु
च्चावचेष्वर्थेषु निपतन्ति त उपे
क्षितव्याः। १२।६।। श्रीनारदेनकि
लमन्त्रेन प्रति विप्रलम्भमाना
असुरपत्न्यस्तमनेन प्रत्यूचुः। ए
के जनास्तावत इतो लोकात् हवि
र्भिः पुरोडाशादिभिः स्वः स्वर्ग सच
न्ते सेवन्ते यान्ती त्यर्थः। अन्ये स
वनेषु यज्ञेषु सोमलता सुन्वन्तो
ऽभिषुण्वन्तः। तेनस्वः सचन्ते।
परे प्राचीर्भिदन्तः। शच्या वाचादे

वान् हर्षयन्तः। उ ताषि अन्ये द
क्षिणाभिः स्वः सचन्ते, वयन्त्वा
न्यकर्मानधिकारेण पतिपरिच
र्ययैव यास्यामः। इति पूर्तिः। नेत्
अहो परिबिभीमः। एते यांस्व पती
नां जिह्मं (कौटिल्यम्) आचर
न्तो नरकं पताभोऽधस्ताद्याम:
स्त्रीणां हि पतिसेवैव परमो धर्म
इत्याशयः। अथ निरुक्तस्य पदवि
वरणम्। नरकं नीचैरस्मिन्नयि
ते गम्यते, नरमणं न रकं रमकं र
तिकरं स्थानमत्रास्ति, पूर्वत्र इ
लोपः उत्तरत्र मलोपः पृषोदरादि
त्वात्, कश्चित्स्वर्क्वति तिष्ठन्ति व
त्सलाः। पर: प्रस्पाचष्टे, तिष्ठन्तीति,
प्रष्टापदि तिष्ठन्ति कुतो नायान्ती
त्युक्ते। पर: पुनराह न चेत्सुरं पि

वन्ति तर्हि यास्यन्तीति, मुनेः तेः रकु प्रत्यये, अभिभूयन्ते उपस न्धीयते ऽनेकेन्द्रियैरिति सुराः ए वं, उक्तप्रकारेण उपेक्षितव्या, उ पगम्य गुरुं, अधीत्य लक्षण (शा स्त्र) शास्त्रं तदनु ईक्षितव्याः परी क्ष्याः शब्दाः कः कस्यार्थ इति, अय के थम त्रमादकत्वं फलं प्राप्तं प्रस्तु तमदन्त इति पदेन हर्षजनकत्वं गृ ह्यते शचीपदं वा ज्ञा चकन्ताका दे वान् हर्षयन्तः। हर्षजनयन्ती सर्वे किं चन चेत्सुरां चिवन्ती त्यनेन सुरा निषेधः प्रस्तुतप्राप्तः। सुरास्यागपूर्वक यज्ञप्रवेशाभिधानात्, अत्रेद मुक्तमुक्तं भवने सर्वशब्दाः पत न्ति यथा सुरा शब्द उत्तमं सोमरसं अधमं मद्यं च बोधयति, अतो गु

रुसमीपं गत्वा शब्दार्थज्ञानं सम्पा
दयेत्, अयमेतन्नः जात्यात्यनेन
वैपरीत्यं सेत्स्यति।। पृ०५९पं०६।
सोमरसस्तुतौ तत्स्वरूपवर्णनमि
ति न ह्यत्र मन्त्रे मद्यस्वरूपवर्ण
नं मद्यस्य स्वादुमधुररसत्वाभावा
त्।। पृ०५९पं०१२ अशुचिद्रव्यसंप
र्कि क्रियाविधिरूपत्वादिति सप्तद
शो हेतुरिति स्वरूपासिद्धो हेतुरि
ति पं०१६ अत्र नहि केवलं पाप
जनकतावच्छेदकधर्मः स्वाशुचि
कः पुरीषत्वादिरेवाशुचित्वम्,
पुरीषादेः शरीरान्तः संसर्गस्य स
देवसत्त्वात्पुरुषस्य पापित्वापत्तेः
अपितु वेदनिषिद्धत्वमेवाशुचि
त्वं वेदविहितत्वमेव च शुचित्वं पु
ण्यजनकतावच्छेदको धर्मः। अ

नाप्तोक्तवामवाक्यविहितेमद्येक
त्वंपुण्यजनकत्वं वामतन्त्रस्यानु
भवत्वस्वीकारेण स्मृतिभिन्नत्वं
साधितमेव, पृ०६० पं०५, (वाम) तन्त्रेधर्मे
प्रमाणं स्वाभाविकौपाधिकान्यत
रपुण्यजनकतावच्छेदकंधर्मवद्
द्रव्यघटितत्वादित्येवं सत्प्रतिपक्ष
श्चेति ॥ अत्र हेत्वसिद्धित्वेन हीन
बलत्वान्न सत्प्रतिपक्षत्वं हेत्वसि
द्धिश्चानुपदमुक्ता अग्रिमतन्त्रमा
त्रसाधनं वामेवानुपयुक्तमिति
यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वानर्थनि
वर्हणं। तं सेवे गणपं देवं गौरीनन्द
नमच्येदम॥१ रामनगाङ्कभूवर्षेग्र
न्थोयंवाडवानलः। जम्बूश्रीनारसिं
हस्य समाप्तिमापसद्मनि॥२ इति
श्रीविश्वेश्वराश्रमप्रणीतो लहरीवा
डवानलः समाप्तः

पृ० १९८ पं० ४ । अशुद्धिः । तदुत्तरं तन्निषधयेति,, शुद्धिः,, तदुत्तरंव्यतिरेकेण यत्रतदूद्धयति,, "अत्र टिप्पणी शाखावच्छेदेन संयोगावत्ताबुद्धेवृक्षउदयादिति वक्तव्ये संयोग वत्तेत्यसम्बद्धम्, अन्यथासंयोगत्वा-वच्छिन्नमूलावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावज्ञानस्य संयोग-त्वावच्छिन्नमूलावछिन्नप्रकारताक बुद्धिंप्रति प्रतिबन्धक-त्वमस्त्येवेति किंचकालिकाव्याप्यवृत्तिभावाभावज्ञान विरो-धनिषेधेदैशिकाव्याप्यवृत्त्युदाहरणस्य पुरतोहेतुकरणंच विषमम्,, अस्यग्रन्थस्यपुनर्मुद्रणेसर्वस्याधिकारः,' अन्या-ऽशुद्धिर्निर्मत्सरैः स्वयमेवविभावनीया, इत्यलम् ,,

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥



